

आवागमन

लेखक

परम सन्त कैप्टन लालचंद जी महाराज

प्रकाशिका

आचार्या डॉ. कमला देवी

पता :-

श्री जय मल सिंह एडवोकेट
कोठी नं. 332, सैक्टर 15-ए
हिसार-125001 (हरियाणा)
फोन नं. : 01662-244725
मोबाइल नं. : 94164-75568

सर्वाधिकार सुरक्षित (सितम्बर, 2008)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

मूल्य : 10/- रूपये

अनुक्रमणिका

<u>क्र.सं.</u>	<u>शीर्षक</u>	<u>पृष्ठ सं.</u>
1.	सतगुरु महिमा	
2.	प्राक्कथन	
3.	भूमिका	
4.	परमभक्त आचार्य श्री जे.सी. गुप्ता के महाराज के प्रति निकले भावपूर्ण उद्गार	
5.	जन्म-मरण रहस्य	
6.	आवागमन की मुक्ति में सतगुरु का महत्व	
7.	सुरत का खेल	
8.	मन का मण्डल	
9.	स्थूल, सूक्ष्म व कारण रचना	
10.	मनुष्य का स्वरूप क्या है ?	
11.	सुख-दुख की उत्पत्ति	
12.	विभिन्न लोक-लोकान्तर	
13.	जीव-रचना	
14.	लख चौरासी योनियां	
15.	आदि-अन्त (उत्पत्ति-प्रलय)	
16.	निज-धाम	
17.	अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची	

प्राक्कथन

ईश्वर की यह सृष्टि बड़ी विचित्र व रहस्यमयी है। मनुष्य यहां आता है, स्वयं अपने हाथों से अपना बगीचा बनाता है और फिर अचानक ही समय या असमय रूपी काल का ग्रास बन जाता है। एक हंसते-खेलते परिवार में से कब किसका किस समय बुलावा आ जाए कोई नहीं जानता है। मनुष्य कितनी बड़ी योजनाएं बनाता है लेकिन एक पल का भी उसे भरोसा नहीं है। मृत्यु की कराल छाया कभी भी उसे अपने आक्रोश में ले लेती है और मनुष्य लाचार, विवश होकर आंसू बहाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता है। कैसी विडम्बना है यह, गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि -

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्ये • र्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

अर्थात् जन्म लेने वाले की मृत्यु और मरने वाले का जन्म निश्चित है, इसलिए तुम्हें इस शोक न करने वाले विषय में दुखी नहीं होना चाहिए। लेकिन कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इस ज्ञान पर ठहरते हैं? यहां तो चारों तरफ रोना-धोना या हाहाकार ही मचा हुआ है। बस इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर मैंने अपने गुरु महाराज जी से प्रार्थना की है कि आप आवागमन के विषय पर कुछ प्रकाश डालिए।

प्रस्तुत पुस्तक 'आवागमन' मेरे परम आराध्य, प्रातः स्मरणीय मालिक स्वरूप हजूर कैप्टन लालचंद जी महाराज द्वारा लिखी गई पुस्तकों की शृंखला में एक बहुमूल्य पुस्तक है। इस पुस्तक में मनुष्य के पुनर्जन्म व आवागमन संबंधी प्रश्नों की गुत्थी को बड़े सहज व सरल तरीके से प्रस्तुत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि के रहस्यमयी सागर को इस पुस्तक रूपी गागर में भरने का पूरा प्रयास किया गया है। जिसे यह रहस्य समझ में आ जाता है वह इस जीवन में बड़ी

निर्भयता से अपना जीवनयापन करता है और मृत्यु रूपी भूत का वह हंसकर सामना करता है। सुख-दुख, जन्म-मृत्यु रूपी द्वन्द्व में उसकी समता बनी रहती है और वह किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होता है। मेरे विचार से यह ज्ञान ही मनुष्य को मृत्यु रूपी भय के फन्दे से मुक्त कर सकता है।

12 वर्ष तक महापुरुषों की तलाश के बाद मेरे जीवन में आने वाले ये पहले महापुरुष ऐसे हैं जिनको मैंने हर समय उस परमात्मा रूपी तत्व की धार में लीन व हर समय, हर स्थिति में समता में पाया है। मान-अपमान, लाभ-हानि, सुख-दुख की अवस्था से परे बड़ा सहज व सरल कबीर की तरह अपनी कमाई से जीवनयापन करने वाले ये एक विरले महापुरुष हैं जो कभी-कभी इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। प्रतीत होता है कि स्वयं ज्ञान ही शरीर धारण करके इनमें समाहित है। इनकी ज्ञान रूपी गंगा में जो भी स्नान करता है वह पवित्र व पावन होकर ही निकलता है। अधिक न कहकर अन्त में यही कहना चाहूँगी कि लोक व परलोक बनाने वाले जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक एक अथाह खजाना है लेकिन यह खजाना उसी के हाथ लग सकता है जो पुस्तक के ज्ञान को अपने जीवन में उतार लेता है। आशा है ज्ञान-पिपासुओं के लिए यह पुस्तक अत्यंत लाभदायक व बहुमूल्य सिद्ध होगी।

पुस्तक के प्रकाशन में अपना बहुमूल्य समय निकालकर सहयोग देने वाले भ्राता एडवोकेट श्री जयमल सिंह के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ और आर्थिक योगदान में हमेशा से बढ़चढ़कर साथ देने वाले आचार्य श्री जे.सी. गुप्ता (यू.के.) के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहती हूँ जिनका सहयोग हमेशा से ही सराहनीय रहा है।

डॉ. कमला देवी

प्राध्यापिका (एम.एम. कॉलेज)

फतेहाबाद

फोन: 01667-225520

मो. : 9416475568

सतगुरु महिमा

जाकै रहनि अपार जगत में, सो गुरु नाम पियारा हो। (टेक)

जैसे पुरइनि रहि जल भीतर, जलहि में करत पसारा हो।

वाके पानी पत्र न लागै, ढरकि चलै जस पारा हो॥

जैसे सती चढै सत ऊपर, स्वामी वचन न टारा हो।

आप तारै औरन को तारै, तारै कुल परिवारा हो॥

जैसे सूर चढै रन ऊपर, पाछे पग नहीं डारा हो।

वाकी सुरत रहै लड़ने में, प्रेम मगन ललकारा हो॥

भवसागर इक नदी अगम है, लख चौरासी धारा हो।

कहत कबीर सुनो भाई साधो, बिरले उतरे पारा हो॥

(शब्द)

तेरा जन्म-मरण कटै रोग, दवाई पी ले नाम की। (टेक)

तीन ताप से जीव दुखी हैं, मचा जगत में शोर।

सब रोगों की एक औषधि, करो नाम पर योग॥ दवाई पी ले.....

नाम सजीवन बूटी है, कोई समझै विरला लोग।

जो कोई पीवै युग-युग जीवै, भीड़ै कर्म का योग॥ दवाई पी ले.....

माला जपै कोई खड़ा तपै, कोई मंदिर में लगावै भोग।

नाम अनामी सबका स्वामी, पावै चौथे लोक॥ दवाई पी ले.....

सतगुरु रामसिंह कहै, सुरत शब्द का जो कोई साधै योग।

कहै ताराचंद सब कटै बीमारी, गुरु देते हैं योग॥ दवाई पी ले.....



भूमिका

मैंने आज तक जितने सत्संग दिए हैं अधिकतर प्रवृत्ति मार्ग पर ही दिए हैं। प्रवृत्ति मार्ग है इस संसार में सुख आनन्द व प्रसन्नता से जीवन जीना। इसकी रहनी है सुबह शाम राम-राम, दिन भर काम और रात को आराम। दूसरा है निवृत्ति मार्ग। इसका अर्थ है सांसारिक, भौतिक सुखों को त्याग कर परमात्मा की तरफ चलना। क्योंकि यह दुनिया दुखों का घर है। इस शरीर के रहते ऐसा कुछ किया जाए जिससे यह शरीर छोड़ने पर वापिस इस लोक में न आना पड़े। यह लोक काल और माया का है। यहां दुख ही दुख है। यहां जो भगवां वस्त्र पहने सन्यासी घूम रहे हैं या जो गुरु, पीर, महात्मा, फकीर, सन्त या शंकराचार्य बने बैठे हैं ये सब निवृत्ति मार्ग के ही हैं।

प्यारे पाठकों! मैं इस विषय का 1956 से अनुभवी हूँ और योग साधन से एक विशेष तत्व का अनुभव करता रहता हूँ परन्तु शरीर छोड़ने के बाद का कोई दावा नहीं कि कहां जाऊंगा? दूसरा जब मैं सत्संग देता हूँ तब न तो कोई पुस्तक पढ़ता हूँ और न कुछ तैयारी करता हूँ कि सत्संग में क्या कहना है? मैं सहज योग का योगी हूँ। अधिक समय समस्थिति में रहता हूँ यानी विचारों से ऊपर। जब सत्संग देने बैठता हूँ तो वहां जो भाई-बहन, बेटियां बैठे होते हैं उनके विचार की धारा मेरे मन से टकराती है और जो उनके विचार होते हैं उन्हीं के अनुसार मेरे मुंह से बातें निकलती रहती है। इसको विकिरण धारा या Law of Radiation कहते हैं। इससे उनके प्रश्नों का उत्तर वहां सत्संग में ही मिल जाता है परन्तु यदि कोई अपने ही विचारों में फंसा हो और मेरी बात ही न सुने तो उसकी कोई बात नहीं है।

मैं 1960 से सत्संग देता आ रहा हूँ, परन्तु इस आवागमन से दुखी कोई मेरे सत्संग में नहीं आया होगा, इसलिए मैंने आवागमन पर कोई सत्संग नहीं दिया।

यह पुस्तक मैं आचार्या डॉ. कमला के विचारों के कारण लिख रहा हूँ। उसने मेरे गुरु

महाराज पंडित फकीरचंद जी की पुस्तक 'आवागमन' पढ़ी है, दूसरा यह संस्कृत की पी.एच.डी. है। इसका इस विषय संबंधी कोई संस्कार रहा होगा जो यह पूछना चाहती है। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा हूँ। यदि किसी और सज्जन को भी शंका हो तो वह इस पुस्तक का लाभ ले सकता है। इस विषय पर महात्माओं ने बहुत से ग्रन्थ लिखे हुए हैं जो उनके संस्कार, प्रकृति तथा योग साधन के अनुभव के आधार पर अपने-अपने स्थान पर सब सही है। मैं तो जो मेरा अनुभव है उसके अनुसार लिख रहा हूँ और यह भी दावा नहीं है कि जो मैंने अनुभव किया है यह ही सत्य हो। आज तक जितने महापुरुष यहां से गए हैं किसी ने वापिस आकर यह नहीं बताया कि वह अब कहां हैं और किस सुख या दुख को भोग रहे हैं? और न अब वर्तमान महापुरुष जो ज्ञान दे रहे हैं यह बता सकते हैं कि वे पहले जन्म में कहाँ और क्या थे तथा यह शरीर छोड़कर कहाँ जाएंगे? यह तो अपनी-अपनी खोज या अनुभव की बात है और हर मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न हैं तथा संस्कार भी अलग-अलग हैं अतः जो भी अनुभव हों वह एक नहीं हो सकते। अतः हम यह दावा नहीं कर सकते कि उनका अनुभव गलत है।

यदि पाठक सज्जनों को इस विषय में लाभ हो तथा उनकी शंका भ्रम दूर हों तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

कैप्टन लाल चन्द

गांव पोस्ट दांदू

जिला चुरू (राजस्थान)

पिन : 331001

फोन: 01562-283121

परम भक्त आचार्य श्री जे.सी. गुप्ता के महाराज जी के प्रति निकले भावपूर्ण उद्गार

धार कैप्टन रूप जग विच, आ गया बाबा फकीर ।

सन्त सतगुरु औलिया शाहां दा शाह, पीरां दा पीर ॥

1. जिस समय संसार विच अन्धेर ही अन्धेर सी ।
उलफता¹ नू खाई जांदा नफरता दा शेर सी ॥
किस्ती ए इन्सानियत दे गिर्द घूमन घेर सी ।
डूब जाने विच न कोई कसर सी न देर सी ॥
आ खुदा बनके किनारे ला गया मर्दे फकीर ।
धार कैप्टन रूप जग विच, आ गया बाबा फकीर ॥
2. सहकदी² इन्सानियत सी, तड़फदा इन्सान सी ।
आदमियत दा बराबर हो रहा अपमान सी ॥
शेख³ सी मगरूर पंडित नु बड़ा अभिमान सी ।
बिक रहा वाहे गुरु, अल्ला मियां भगवान सी ॥
गद्दिया वाले महन्ता दी निराली शान सी ।
मोक्ष दे एजण्ट बन बैठे हुए शैतानी सी ॥
भोले भाले जीवां नु राह पा गया पीरां दा पीर
धार कैप्टन रूप जग विच, आ गया बाबा फकीर ॥

3. हेरा-फेरी दा जमाने विच गर्म बाजार सी ।
 झूठिया गुरुआं ते दुनिया कर रही एतबार⁴ सी ॥
 मोक्ष दे सौदे करन मुक्ति दे ठेकेदार सी ।
 राह तो गुमराह होके लुट रहा संसार सी ॥
 गैर ता होइयां गर्क ते अजमता⁵ लाचार सी ।
 आदमियत मर रही इन्सानियत बीमार सी ॥
 सच दा दारू ले आया इक तबी⁶ वे बेनजीर⁷ ।
 धार कैप्टन रूप जग विच, आ गया बाबा फकीर ॥

4. सच दा सूरज चमकिया, मिट गया अंधियार हुन ।
 हो गई उजली सुबहा, दुनिया हुई बेदार⁸ हुन ॥
 शेर ने जब बड़क⁹ मारी, भज गई सियार¹⁰ हुन ।
 विच गैरा¹¹ दे छुप गए, लूमड़ ते बधियाड़ हुन ॥
 पी के दारू हो गए, राजी बड़े बीमार हुन ।
 है दुआ जिन्दा रहे, कैप्टन वर्ष हजार हुन ॥
 जेल तो मैनु छुड़ावन, बन के आया खुद असीर¹² ।
 धार कैप्टन रूप जग विच, आ गया बाबा फकीर ॥

¹ प्यार, ² मरणासन्न, ³ मौलवी, ⁴ यकीन (विश्वास), ⁵ इज्जत, ⁶ वैद्य, ⁷ बेमिसाल,

⁸ जागरूक, ⁹ दहाड़, ¹⁰ गीदड़, ¹¹ कन्दरा (गुफा), ¹² रक्षक

जन्म-मरण रहस्य

एक बार मैं फतेहाबाद डॉ. कमला के पास गया हुआ था। उसने मुझसे कहा कि मुझे आवागमन के विषय में बहुत सी शंकाएँ व भ्रम हैं। अतः इस विषय पर मैं आपसे शंकाओं का समाधान करना चाहती हूँ। आपने इतने सत्संग दिए हैं और पुस्तकें भी लिखी हैं परन्तु इस जन्म-मरण (आवागमन) की विशेष चर्चा नहीं की है।

उसके पास पंडित फकीरचंद जी महाराज की लिखी हुई 'आवागमन' नामक एक पुस्तक है जो उसने पढ़ी होगी और दूसरा डॉ. कमला संस्कृत में पी.एच.डी. है। हो सकता है उसने शास्त्रों में इस जन्म-मरण के विषय में पढ़ा हो। क्योंकि अधिकतर हम पढ़कर, सुनकर, देखकर ही बाहर से संस्कार लेते हैं।

मेरे इस आवागमन यानी जन्म-मरण के विषय में कोई संस्कार ही नहीं थे। गांव का रहने वाला था और किसान परिवार में पैदा हुआ था। मैंने ऐसी बातें सुनी, पढ़ी नहीं थी और न ही यह विचार कभी मन में आया कि आवागमन भी कोई बात है। दूसरे मैं छोटी आयु में ही दूसरे विश्व युद्ध के समय सन् 1941 में सेना में नौकर हो गया था और बहुत जल्दी ही मुझे अधिकार पद मिल गया था। वहाँ ऐसी बातें सुनने का कोई मतलब ही नहीं था।

फिर 1956 में मैं मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास किसी संस्कार के कारण गया था और वहाँ मुझे 15-20 मिनट की संगत से उस ज्ञान का अनुभव हो गया जिसके अनुभव से आवागमन होता ही नहीं। कहने का भाव यह है कि न तो मुझे आवागमन का कोई भ्रम या विचार पहले था और न अब है। यह आवागमन का विचार ही डॉ. कमला के कहने पर मन में आया है। मैं ही नहीं मानवता की बहुत बड़ी संख्या को इस आवागमन के विषय में कुछ मालूम नहीं है। हालांकि रोज अपनी खुली आँखों से लोगों को जन्मते व मरते देखते हैं परन्तु इस तरफ उन लोगों का विचार ही नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त इस दुनिया में बहुत से सम्प्रदाय व धर्म के ऐसे लोग हैं जो इस आवागमन को नहीं मानते हैं। परंतु मेरे या उनके न मानने से तो जन्म लेने व मरने वाली बात सत्य नहीं हो सकती है। मैंने तो अपने जीवन का अनुभव लिख दिया और उसका कारण जो मेरे समझ में आया, बता दिया। इन धर्म, सम्प्रदायों के महापुरुषों को शायद इस विषय पर उस समय आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई होगी, परन्तु जो सत्य है, वह तो हम देख ही रहे हैं कि प्राणी रोज जन्म लेते हैं और रोज हमारी आंखों के सामने मरते हैं। पहले महात्मा बुद्ध जैसे महापुरुषों ने लोगों के दुःख व कष्ट को देखकर ही इस आवागमन के दुःख व तकलीफों से बचने की विधि को जानने के लिए राजपाट छोड़ा था और पूरे जीवन भर त्याग व वैराग्य का जीवन व्यतीत किया। इस भारतवर्ष व संसार में बहुत से महापुरुष इस प्रकार के हुए हैं।

अब डा. कमला जो मेरा अनुभव इस विषय पर जानना चाहती है उसके लिए सच्चाई यह है कि इस दुनिया में यह जन्म-मरण है और इसे कोई इंकार नहीं कर सकता। परंतु मुझे इस बात का ज्ञान नहीं है कि पिछले जन्म में मैं कहाँ था और क्या था? मैं ही नहीं अब जितने भी महापुरुष जो अध्यात्म का काम कर रहे हैं और गुरु-पीर बनकर लाखों लोगों को ज्ञान दे रहे हैं उनमें से कोई भी यह बात नहीं बता सकता कि पिछले जन्म में वे क्या थे और कहाँ थे? तथा अगले जन्म में कहाँ पैदा होंगे और क्या होंगे? यदि कोई कुछ कहता है तो वह मन के मंडल की बात है।

इसका कारण जो मेरे अनुभव में आया है वह यह है कि हमारे शरीर में ये चार तत्व – शरीर, मन, आत्मा व सुरत मिलकर काम करते हैं और इन चारों के मिलने से ही मनुष्य पूर्ण मनुष्य का रूप बनता है। यह सुरत परमात्मा का एक छोटा सा अंश है। यानी मानव शरीर में यही तत्व परमात्मा रूप है। बाहर के सूर्य, चन्द्रमा और दूसरे ग्रहों की रोशनी जब इस सुरत पर पड़ती है तो इससे विचार, संकल्प व भाव पैदा होते रहते हैं और हमारी सुरत इन भाव या विचारों में हमेशा खेलती रहती है, जिसके जैसे संस्कार होते हैं वह वैसा करने को मजबूर होता है। वास्तव में विचारों व भावों का यही खेल सच्चा आवागमन है और ये विचार व भाव समय-समय पर बदलते

रहते हैं, समाप्त होते रहते हैं और नए बनते रहते हैं। और इस तरह यह सिलसिला चलता रहता है और इस लम्बे सिलसिले में मनुष्य को अपने जीवन की सब घटनाएं याद नहीं रहती है और जब वह इस शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करता है तो कुछ संस्कार जो गहरे होते हैं वह सूक्ष्म शरीर के साथ उसके साथ जाते हैं और वह उसी के अनुसार काम करने लग जाता है। मनुष्य अपने जीवन की सब घटनाएं याद रखें, यह बड़ा मुश्किल है और इसी में मनुष्य की भलाई है क्योंकि उसके जीवन में संस्कारों के अनुसार अच्छी व बुरी घटनाएं घटती रहती हैं और इन सब घटनाओं को याद रखना संभव नहीं है। लाखों में से किसी एक की घटना हम सुनते हैं जो आजकल अखबारों में आती है? जिसे पिछली बातें याद रहती है। तो बात स्पष्ट है कि हर मनुष्य की प्रकृति, संस्कार व अधिकार अलग-अलग होते हैं। मैं दूसरों की बात क्या लिखूँ? मेरे और मेरे पूज्य गुरु महाराज जी की ही बात से समझे। मेरे गुरु जी ने 1905 में नाम लिया था और उनको 1919 में जाकर तत्व का अनुभव हुआ और उन्हीं की दया दृष्टि से मुझे उनके पास बैठने से 15 या 20 मिनट में सन्तों का सबसे ऊंचा अनुभव जो सार शब्द का है वह हो गया। उन्होंने जीवनभर बहुत साधन-अभ्यास किया और जीवन में सांसारिक कष्ट का जीवन गुजारा और मैंने उनकी दया से बहुत खुशी, प्रसन्नता व आनंद में जीवन जीते हुए उस मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण वाले ज्ञान का अनुभव व योग साधन बहुत सहज में किया है। आगे की कुछ कह नहीं सकता हूँ कि क्या गुजरे?

मेरे अनुभव में आया है कि मनुष्य गुरु कृपा से इसी ही जीवन में सहज में संसार के सब काम करते हुए और सब चुनौतियों का सामना करते हुए मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण पद का अनुभव करके इस आवागमन के रहस्य को जान सकता है। लेकिन यह तभी संभव है जब वह योग साधन से अपने शरीर, मन, आत्मा व सुरत तत्व जो परमात्मा का अंश है उसका अनुभव कर अपने आपका अनुभव कर लें, वह क्या है? कहाँ से आया है? यह विषय केवल अनुभव का है और निज अनुभव से ही मनुष्य इसे जान सकता है।

आवागमन की मुक्ति में सतगुरु का महत्व

इस संसार में पूर्ण अनुभवी सतगुरु ही मनुष्य को आवागमन के चक्र से छुटकारा दिला सकता है। सतगुरु के सत्संग में जीव को चार बातें मिलती हैं - सही समझ, विवेक, अनुभूति व ज्ञान। इस आत्म तत्व का निज स्वरूप के पूर्ण ज्ञान से ही जीव को मुक्ति मिल सकती है और यह मुक्त अवस्था इसी जीवन में उसके अनुभव में किसी मुक्त जीवित गुरु की कृपा से आती है। बाहरी गुरु उसे सहज में सुरत शब्द योग सिखाता है जिससे उसका मन एकाग्र हो जाता है और उसे यह ज्ञान हो जाता है कि वह कौन है और कहाँ से आया है? और उसके मन से आवागमन का भ्रम निकल जाता है। जैसा कि शास्त्रों में भी लिखा है -

ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति, पूजा मूलं गुरु पदम्।

मन्त्र मूलं गुरुर्वाक्यम्, मोक्ष मूलं गुरु कृपा ॥

अतः जो सज्जन आवागमन से बचना चाहते हैं उन्हें इस ज्ञान योग की सहज रहनी बनानी चाहिए जो बहुत आसान बात है। जरूरत है तो बस सच्ची चाह, इच्छा व लगन की। फिर वैराग्य सहज ही अपने आप हो जाता है। जैसा कि इस शब्द में कहा है -

शब्द

भाई सोई सतगुरु सन्त कहावे, जो नैनन अलख लखावे।

डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावै।

प्राण पूज्य क्रिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै ॥

द्वार न रुंधे पवन न रोके, नहिं अनहद उरझावै ।
यह मन जाय जहां लग जब ही, परमात्म दरसावै ॥

कर्म करे निकर्म रहे जो, ऐसी युगति लखावै ।
सदा विलास त्रास नही मन में, भोग में जोग जगावै ॥

धरती त्याग आकाश हुं त्यागे, अधर मढैया छावै ।
सुन्न शिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावै ॥

भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवे ।
कहे कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावै ॥

इस शब्द में सतगुरु की रहनी लिखी हुई है और ऐसा सतगुरु अधिकारी को सहज समाधि सिखाता है। यह जो हम ध्यान-धारणा में आंख, कान, मुंह, बंद करके योग साधन करते हैं, ज्ञान योग में इसकी आवश्यकता नहीं है। जिसका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य कायम है और जिसे वैराग्य है वह सतगुरु का सत्संग सुनकर सहज ही ज्ञान योग में ठहर जाता है या जिसने नीचे के सब साधन कर लिए हैं और मन को पवित्र कर लिया है, वह भी किसी पूर्ण अनुभवी का सत्संग सुनकर सहज ही ज्ञान योग में ठहर जाता है। ऐसा व्यक्ति हजारों लाखों में कोई एक होता है। वैसे सन्तों के मार्ग पर सहज सुरत शब्द का साधन करके हजारों लाखों लोग ज्ञान-योग की मंजिल पर पहुंचे हैं। यह दोनों ही मार्ग मंजिल पर पहुंचने व निज घर जाने के लिए हैं। यह कोई नई बात नहीं है। पहले भी बहुत से ज्ञानी महापुरुष हुए हैं। जैसे राजा जनक की चर्चा आती है। सन्त नाम ही ज्ञानी पुरुष का है। कोई बहुत जल्दी तो कोई निचले दर्जों का साधन-अभ्यास करके अन्त में ज्ञान

अवस्था में आकर जीवनमुक्त अवस्था में जीवन जीते हुए जीवों को चेताते रहते हैं।

तो बात स्पष्ट है कि ज्ञानी को कोई आवागमन नहीं है। इस शरीर के त्यागने पर उसकी सुरत जो परमात्मा का अंश, ब्रून्द रूप है वह अपने निज रूप, परमात्मा जो सागर रूप है उसमें लीन हो जाती है। अब इससे आगे चर्चा कौन करें ?

वास्तव में यह आवागमन एक ऐसा विषय है जिसने बहुत से लोगों को भ्रमित कर रखा है। जैसे हम रोज मनुष्य को जन्मते व मरते देख रहे हैं जो कोई योग साधन वाली तथा गुप्त बात नहीं है। यह एक रहस्य की बात है कि हम दूसरों को तो जन्मते व मरते देखते रहते हैं परन्तु अपने खुद के विषय में एक पर्दा पड़ा है जो हमको इस बात का विचार ही नहीं आता कि हमने भी मरना है और फिर हम कहाँ जायेंगे ? यानी अपना मरना नहीं दिखता है।

सच तो यह है कि यह सन्त मत की शिक्षा ही इस आवागमन या जन्म-मरण से मुक्त करने की है। शुरु से जीव को सुमिरन ध्यान सिखाया जाता है। इससे जब उसका मन एकाग्र हो जाता है तब उसे आगे ध्यान लगाने की विधि बताई जाती है। फिर जब वह संकल्प-विकल्प से ऊपर निकल जाता है तब उसे आगे प्रकाश व शब्द का अनुभव होता है। इस तरह चलते-चलते जीव आगे सार शब्द के अनुभव में पहुँचता है और इसका साधन करते-करते वह सब तरह के विचार, भाव तथा लगाव यानी आसक्ति से मुक्त हो जाता है। और इस मुक्त अवस्था का अनुभव उसे इसी ही जीवन में इस शरीर के रहते हो जाता है। जैसे मेरे गुरु महाराज जी ने कहा है -

जब ज्ञान मिला तब मैं न रही, अरु मैं के संग में तू भी गया।

जब ऐसी हालत प्राप्त हुई, फिर आवागमन है किसको रहा।।

इस विषय में मेरी स्थिति ऐसी है कि मैं सहज योग साधन में दिन में कई बार शरीर, मन और आत्म पद से ऊपर निकल जाता हूँ परन्तु मरने के बाद क्या गुजरे ? इसके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। तो बाहरी पूर्ण विवेकी जीवित सतगुरु की कृपा यही होती है कि वह जीव को इसका भेद बताता है जिससे उसका भ्रम दूर हो जाता है और फिर निज अनुभव से उसकी सुरत

आवागमन से सदा के लिए मुक्त हो जाती है। शब्द है -

गुरु ने दीना भेद अगम का, सुरत चली तज देश भरम का।

बल पाया अब विरह मरम का, भटकन छूटा दैरो हरम का।।

वर्षन लागा मेघ करम का, संशय भागा जन्म-मरण का।

तोड़ दिया अब जाल निगम का, सुख पाया अब हम दम-दम का।।

फल पाया आज हम सम दम का, भंवर हुआ मन सेत पदम् का।

फूंक दिया घर लाज शरम का, काटा फंदा नियम धर्म का।।

ज्ञान ध्यान वाचक हम छोड़ा, भक्ति भाव का पहना जोड़ा।

भक्ति भाव की महिमा भारी, जानेंगे कोई सन्त पुजारी।।

संत नाम सत पुरुष अपारा, चौथे माहिं करे दरबारा।

सुरत शब्द मारग कोई पावे, सो हंसा चढ लोग सिधावे।।

सो मार्ग अब राधास्वामी गाई, कोई-कोई प्रेम भक्ति से पाई।

तो यहां बात समझने वाली यह है कि जब तक मनुष्य की बुद्धि किसी बात का विश्वास या निश्चय रखती है या उसके विचार, भाव में किसी भी तरह का अहंकार है तो उसे पूर्ण ज्ञान नहीं है और जब तक वह पूर्णता तक नहीं पहुंचेगा तब तक उसका जन्म-मरण कायम रहेगा। पूर्ण ज्ञान

से मनुष्य के समस्त विश्वास और धर्म समाप्त हो जाते हैं और वह अपने अहं भाव या 'मैं' को खो देता है। इस ज्ञान के बाद आवागमन का कोई प्रश्न ही नहीं रहता, यह बात सिद्धान्त की है। लेकिन जब तक वह प्रत्यक्ष रूप में किसी मूर्ति का पूजक या किसी अन्य गुरु-पीर का उपासक है या फिर वेद, शास्त्र या पुराण जैसे ग्रन्थों का अहंकारी है अथवा वह अपने आपको हिन्दू, मुसलमान, किसी पंथ या सन्तपने के विचार से बांधे हुए है तो उसका आवागमन के चक्र से निकलना मुश्किल है। इसके विपरीत जो सब प्रकार के भाव, विचार व बंधन से मुक्त है, स्वतंत्र है और जो किसी के खण्डन-मण्डन से कोई वास्ता नहीं रखता वह अपनी स्थिति में रहते हुए सहज मुक्त अवस्था में जीवन जीता है, वह यहां भी मुक्त है और शरीर छोड़ने पर निज रूप में समाने पर भी वह मुक्त है।

यहां यह बात भी नहीं है कि ऐसा मुक्त ज्ञानी पुरुष यहां दुनिया में कोई काम नहीं करता है। वह बहुत काम करता है परन्तु उसके सभी कार्य स्वार्थरहित व निष्काम भाव से होते हैं। जैसे गीता में इसके लिए कहा गया है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।

मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गो • स्त्वकर्मणि।।

ऐसा मुक्त पुरुष न हिन्दू होता है न मुसलमान, न धर्मी, न अधर्मी। वह केवल एक इन्सान होता है।

मैं जो यह विचार प्रकट कर रहा हूँ यह केवल एकाग्रचित्त सज्जनों के लिए है क्योंकि यह विषय योग साधन का है। वैसे अक्ल या बुद्धि से कुछ समझ भी लिया जाए तो वह स्थिर नहीं होगा। किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से सत्संग सुनकर, विधि सीखकर साधन करना आवश्यक है और फिर जो खुद का अनुभव होगा, वह सही होगा। जैसे कहा है -

“आप आपको आप पहचानो, कहा और का नेक ना मानो।

जब तक न देखो अपने नैना, तब तक न मानो गुरु के वैना।।”

“पहचान ले अपने को तो इंसान खुदा है।
जाहिर में गो है खाक मगर खाक नहीं है।।”

“कहे नानक बिन आपा चीन्हे, मिटे न भरम की काही।”

❄️❄️❄️❄️❄️❄️❄️

❄️❄️❄️❄️

❄️

सुरत का खेल

मनुष्य की सुरत मौज से यहां मनुष्य रूप धारण करके खेल खेलने आती है। वह कभी आनन्द लेती है तो कभी तकलीफ महसूस करती है। कभी उसे खुशी है तो कभी गम यानी मनुष्य के अन्दर जो उसका हैपना है, वह उसके अस्तित्व के खेल में हर समय खेलता रहता है और समय-समय पर उसकी यह खेल की हालत बदलती रहती है और जब वह इस खेल से उपराम हो जाता है तब वापिस निज घर की तरफ उसका रूझान होता है। यानी दुनिया के खेल में जब उसकी रुचि नहीं होती तब वापिस जाने की बात है। अतः सुरत का भाव व बोध में आना या खेलना और अपने आपको भूल जाना ही आवागमन है और जब तक वह अपने इस भाव विचारों के खेल से उपराम नहीं होता तब तक उसका अपने निज घर की ओर आकर्षित होना संभव नहीं है। परन्तु यह भी मौज का खेल है। जैसे कहा है -

न अपनी खुशी आये, न अपनी खुशी चले।

लाई हयात, कजा ले चली चले।।

और इस पृथ्वी पर मानव शरीर ही एक ऐसी अवस्था है जहां पर उसे निज घर या अपने स्वरूप की ओर जाने का विचार मिलता है क्योंकि इसमें पूर्णता है और वह सब भावों का अनुभव कर सकता है। जैसे शास्त्रों में कहा है -

मानव तन सुर को भी दुर्लभ।

मनुष्य के मन में बाह्य संस्कारों के प्रभाव से भाव स्वयंमेव उत्पन्न होते रहते हैं और साथ ही यह नाश होते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने भावों का तमाशा दिखाता रहता है। यह भाव व विचार उत्पन्न हो-होकर नष्ट होते रहे हैं और यह बात असम्भव है कि हम अपने पिछले भावों को याद रख सकें कि हम पहले कौन थे, कहाँ थे और हमने क्या-क्या कर्म किए थे? हाँ, पिछले

जन्मों के संस्कार सूक्ष्म शरीर के साथ होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य एक विशेष तबीयत लेकर पैदा होता है और उनके अनुसार यहां काम करने लग जाता है। अपने ही संस्कारों के अनुसार मनुष्य यहां लीला (खेल) करता है।

मुझे इस आवागमन के विषय का पूरा अनुभव है परंतु मैंने आज तक सत्संगों में या अपनी पुस्तकों में कभी इसकी चर्चा नहीं की। मैं 1962 से अब तक प्रवृत्ति मार्ग पर ही सत्संग देता आ रहा हूँ, क्योंकि मुझे निवृत्ति मार्ग का कोई राही (मुसाफिर) ही नजर नहीं आया। इसलिए मैंने इस सांसारिक जीवन को सुख, आनन्द से खुशियां मनाते हुए जीने पर ही अधिक सत्संग दिए हैं।

जैसा मैंने पहले आप सज्जनों को बताया है की मनुष्य के मन से नए-नए भाव व विचार पैदा होते रहते हैं और वह अपने भाव व विचारों के अनुसार खेलता रहता है और जब किसी के भाव विचार पूर्णता को पहुंच जाते हैं तब उसमें उदासी के विचार उत्पन्न हो जाते हैं और उसका यहां किसी भी खेल में मन नहीं लगता। इसको अध्यात्म में वैराग कहते हैं। वास्तव में सन्तों का मार्ग उन्हीं सज्जनों के लिए लाभ का है जिनको यहां वैराग हो जाता है और संसार के किसी खेल में जिनको रस नहीं आता अर्थात जिनके अन्दर संसार का खेल खेलते-खेलते उपरामता आ जाती है उनके लिए पूर्ण सन्तों का सत्संग सोने में सुगंध का काम करता है। हमारी यह सुरत पता नहीं कितने युग-युगान्तरों से अपने ही भाव-विचारों के खेल में फंसी हुई है और जब यह खेल खेलते-खेलते थक जाती है तब वापिस अपने निज घर की तरफ जाना चाहती है और उस समय कोई सन्त सज्जन उसे सत्संग देकर उसका मार्गदर्शन करता है और यह काम भी मौज से होगा। जैसा गुरुनानक जी ने कहा है -

करे करावे आप ही आप, मानुष के कुछ नाही हाथ।

कुछ सज्जन सन्तों के पास संसार के झमेलों से तंग आकर जाते हैं और फिर सन्तों की संगत व उनके सत्संग सुनते-सुनते उन्हें वैराग्य हो जाता है और वह अध्यात्म के अधिकारी बन जाते हैं क्योंकि संग का बहुत प्रभाव होता है - 'जैसा संग, वैसा रंग।' फिर जो पूर्ण सन्त होते हैं

उनसे पूर्णता की विकिरणधारे निकलती रहती हैं और जो श्रद्धा, भाव, प्रेम व विश्वास से उनके दर्शन करता है, उसमें सहज ही सन्त के गुण आते जाते हैं। वास्तव में सन्त नाम ही सम स्थिति का है। ऐसा महापुरुष हमेशा परमात्मा के प्रेम में मस्त रहता है और उसे इस संसार की लीला में कोई रुचि नहीं होती है। अब जो ऐसे महापुरुष का दर्शन, सेवा व संग करेगा तो सहज ही गुरु का गुण उसमें आ जाएगा, क्योंकि बाहर के प्रभावों से ही विचार-भाव उत्पन्न होते हैं और हम वैसा करने को मजबूर होते हैं। जैसे कहा है -

गुरु और पारस में, यही अन्तरो जान।

वह लोहा कंचन करें, गुरु करले आप समान।।

यह आवागमन तथा जन्म-मरण की चर्चा ही निवृत्ति मार्ग है जो खास-खास व्यक्तियों के लिए है। परन्तु आम मनुष्य प्रवृत्ति मार्ग का अधिकारी है। उसके लिए आवश्यक है कि वह शिव-संकल्प तथा सुन्दर व आशावादी विचार रखें क्योंकि यह लोक विचारों का है। जिसके जैसे विचार होंगे, वैसी ही उसकी दुनिया होगी। अतः इस लोक का जीवन आस-विश्वास व प्रेम-प्यार का हो। वह खुद खुश रहे और दूसरों को खुश रखें। खूब कमावे, खावे और खिलावे और जब इस दुनिया के जीवन में उसे आनन्द रस, खुशी व मस्ती न आवे तब वह इसी जीवन में मुक्ति, मोक्ष व निर्वाण का अनुभव किसी सन्त की संगत करके विधि सीख लें। मेरे अनुभव में यह निर्वाण व मुक्ति वाली बात बहुत आसान आई है और मैं चाहता हूँ कि आप भी इसी जीवन में सहज में संसार का सब काम करते हुए और सब चुनौतियों का सामना करते हुए गुरु कृपा से इस मुक्ति, मोक्ष व निर्वाण पद का अनुभव कर लें, क्योंकि जब तक हमारी सुरत अनुभव के द्वारा अपने निज स्वरूप में नहीं मिलती तब तक हमें आवागमन प्रतीत होता है, जो सत्य है और जब यह सुरत योग-साधना से अपने निज रूप (परमात्मा तत्व) में मिल जाती है तो मनुष्य यह जान जाता है कि वह कौन है और कहाँ से आया है? तो इस अनुभव के बाद आवागमन समाप्त हो जाता है।

इस आवागमन के विषय में मेरा अपना अनुभव यह है कि मैं दिन-रात के अधिक समय

में सुरत-शब्द के अनुभव में होता हूँ और यदि अन्त समय मेरा यह अनुभव रहा तो सिद्धान्त के अनुसार मेरी बून्द रूपी सुरत अपने समुद्र रूपी परमात्मा में समा जाएगी। परन्तु है यह बात अनुमान की, इसमें दावा कुछ नहीं किया जा सकता है, क्योंकि सब मालिक की मौज का खेल है। जैसे कहा है-

“खुदा की खुदाई खुदा ही जाने।”

“उसकी लीला कौन जाने, वह तो अपरम्पार है।”

“तुमरी गत मत तुम ही जानी, नानक दास सदा कुरबानी।।”

परन्तु प्यारे सज्जनों! मैं अपनी इस स्थिति में पूरी तरह से संतुष्ट हूँ। मुझे किसी तरह का कोई अफसोस नहीं है, क्योंकि मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं। यदि शरीर छोड़ने पर मेरी सुरत उस मालिक में लीन हो गई तो ठीक है और यदि ऐसी मौज नहीं हुई तो मैं उस मालिक की रजा में राजी (खुश) हूँ क्योंकि इस लोक का मेरा यह जीवन शुरु से अब 85 साल की आयु तक अति आनन्द, खुशी और उमंग में बीता है। जैसे पहले शब्द में कहा गया है -

सदा विलास त्रास नहीं मन में, भोग में जोग जगावे।

यह योगी की एक अवस्था है कि वह हर समय खुशी व उमंग में रहे, कभी घटिया भाव या विचार मन में न लाए और भोग में जोग जगावे अर्थात् खाते, पीते, देखते, सुनते, चलते, फिरते हर काम को साक्षी भाव से देखे। यह सब खेल इस सुरत का है। अतः यदि मुझे यहां वापिस भेज दिया गया तो मैं यह गुरु ज्ञान दूर-दूर तक मनुष्य जाति तक पहुंचाऊंगा और इस मनुष्य जीवन को सुख-शांति से जीने की विधि बताऊंगा। मैं उस प्रभु इच्छा या गुरु की मौज में खुश हूँ क्योंकि मेरे मन में आवागमन का कोई भ्रम नहीं रहा है और मैं चाहता हूँ कि पाठक सज्जन अपने स्वयं को जानने का अनुभव ज्ञान प्राप्त करके इस भ्रम, शंका से मुक्त हो और वे अपनी जीवनलीला सुन्दर बनाएं।

मन का मण्डल

आज संसार में ये जितने भी धर्म, पन्थ व सम्प्रदाय हैं, यह सब अधिकतर मन के मण्डल में हैं। मनुष्य का मन एक महान शक्तिशाली तत्व है और प्रत्येक मनुष्य अपने मन से उत्पन्न होने वाले भाव व विचारों के खेल में फंसा हुआ है। क्या योगी, क्या ज्ञानी, क्या ध्यानी, क्या तपस्वी, क्या मुनि व पीर सब के सब इस मानसिक जगत के खेल में खेल रहे हैं और सारा संसार इस संकल्प के जीवन में एक विशेष प्रकार के चक्र में है। जब तक कोई व्यक्ति अपना इष्ट किसी शरीर को या विचार को बनाए रखता है वह आध्यात्मिक पुरुष नहीं हो सकता है। क्योंकि इष्ट हमेशा विचार से उत्पन्न होता है और विचार मन से निकलता है। इसलिए कोई प्राणी चाहे वह किसी धर्म को मानने वाला या किसी मूर्ति का हो, जब तक वह मनुष्य को अपना इष्ट या उपास्य देव बनाए रखता है तो वह सुख-दुख, शोक-हर्ष व जन्म-मरण के चक्र से नहीं निकल सकता और उस परम शांति व परम आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य का अपना आत्मस्वरूप प्रकाश रूप है और जब साधक को अपने अन्तर में जो तरह-तरह के रूप, रंग, रेखाएं नजर आते हैं तो वह सब के सब उसके भाव, विचार, संस्कार व विश्वास के कारण होते हैं जो उसके मस्तिष्क पर जन्म-जन्मान्तरों से व बाह्य प्रभावों से पड़े हुए होते हैं जो उसने सुने, देखे व पढ़े हैं और जब तक उसके ये संस्कार व छाप नहीं मिटते तो संस्कारों के अनुसार उसका आवागमन लाजिमी है। अर्थात् माया के चक्र से वह निकल नहीं जाता तब तक उसका आवागमन समाप्त नहीं हो सकता। अतः जीव का सहायक उसका अपना ही मन, आपा, विश्वास व साधन अभ्यास है। बाहरी गुरु का कार्य उसके अज्ञान को मिटाकर सच्चा भेद बताना है। महर्षि शिवब्रतलाल जी ने एक शब्द लिखा है -

यह मन समझन योग साधो, यह मन समझन योग।

मन ही ज्ञान और मन ही ध्यान है, मन ही मोक्ष और भोग।

मन में वेद को पढ़ते ब्रह्मा, शंकर करते योग ।

मन ही अन्दर सृष्टि व्यापी, मन ही में है रोग ।

मन गोबिंद, मन गोरख रूपा, मन ही योग वियोग ।

मन ही पानी मन ही अग्नि है, मन ही आनन्द सोग ॥

मन ही गुरु है मन ही चेला, मन ही ब्रह्म संयोग ।

मन ही का व्यौहार जगत में, नहीं समझे लोग ॥

इस आवागमन से मुक्ति पाने के लिए सभी सन्त सज्जनों ने बहुत सहज विधि की चर्चा की है । शैली सबकी अपनी-अपनी है । सभी ने जीव के संस्कार व अधिकार के अनुसार ज्ञान दिया है और सन्तों का वही ज्ञान आज भी समय के अनुसार मनुष्य के अपने मन, वचन व कर्म को शुद्ध-पवित्र करने के लिए तथा जन्म-मरण से मुक्ति पाने के लिए अत्यंत आवश्यक है । संतों ने एक बात बहुत साफ कर दी है कि वक्त गुरु जो अब शरीर में है व खुद मुक्त है, वही मनुष्य को मुक्त होने की विधि बता सकता है । इसलिए कहा है -

तन मन वाको दीजिए, जामे विषय नाहि ।

ऐसा गुरु साधक को मुक्ति का भेद देता है । वह साधक को यह बात स्पष्ट कर देता है कि ये जितने भी भक्त, उपासक, योगी हैं जो अपने-अपने विश्वास के अनुसार अपने-अपने घट में अपने इष्ट, गुरु, पीर या देवी-देवता का रूप बनाकर आनन्द लेते हैं वह उनका अपना मनानन्द हैं । कोई साधक अपने अन्तर प्रकाश का अनुभव करके आनन्द लेता है और ऋद्धि-सिद्धि को पा लेता है तो कोई अपने अन्तर लोक-लोकान्तर व अन्य नजारों का अनुभव करता है और उसी को सत्य

मानकर अपनी एकाग्रता या समाधि में मस्ती-खुशी लेता है। ऐसी स्थिति में बाहर का अनुभवी महापुरुष उसे यह भेद देकर रहस्य खोलता है कि यह जो कुछ आप अपने अन्तर में अनुभव कर रहे हैं या देख रहे हैं, यह तो आपका अपना ही मन है, यह सत्य नहीं है। यह कल्पित है जो भासता है वास्तव में है नहीं। इसी को अध्यात्म ज्ञान में काल और माया कहा है।

मेरी लगभग सभी पुस्तकों में यह भेद मिलेगा कि विश्वासी सज्जन जगह-जगह मेरा रूप प्रकट करके जो चाहते हैं, सहायता ले लेते हैं, परन्तु मुझे कुछ मालूम नहीं होता कि कौन मेरा ध्यान करता है और मैंने उसकी क्या सहायता की है? भक्तों के साथ हर रोज ये घटनाएं घटती रहती हैं। तो यह रहस्य क्या है? रहस्य यह है कि मनुष्य के मन में जबरदस्त शक्ति है जो अपने अन्तर में अपने इष्ट का स्वरूप प्रकट कर लेता है और यह इष्ट मन की पवित्रता है जो होने वाली बात पहले ही बता देता है और यदि साधक का मन पवित्र नहीं है तो वह बात गलत भी हो सकती है।

अब जब साधक को यह भेद मिल जाता है तो वह अपने अन्तर के जिस अनुभव में उलझा हुआ था, उसे सत्य न मानकर आगे बढ़ता है और अपने अन्तर के नजारों व चमत्कारों से आगे उसे शब्द की धार का अनुभव होता है जिनका शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य ठीक होता है उनको प्रकाश का अनुभव हो जाता है। यह साधक की प्रवृत्ति व संस्कारों पर निर्भर है। किसी को केवल प्रकाश का अनुभव होता है तो किसी को शब्द का और किसी को प्रकाश व शब्द दोनों का। कहने का भाव यही है कि सूक्ष्म लोक के काल और माया के अनुभव में जो योगी सज्जन उलझे रहते हैं, उनको गुरु अगम क भेद समझाकर दया करके इन नजारों, चमत्कारों व ऋद्धि-सिद्धियों के चक्कर से निकाल देता है। यह बाहर के जीवित गुरु की महिमा है। इसलिए कहा है -

वस्तु कहीं ढूँढे कहीं, केहि विधि आवे हाथ।

कहे कबीर तब पाइए, जब भेदी लीजे साथ ॥

अमृतसर के पास का एक रामचन्द्र जी नाम का शर्मा मुझे होशियारपुर में मिला था। यह पंडित फकीरचन्द जी महाराज का विश्वासी थी। परम दयाल फकीरचन्द जी के शरीर त्याग के

बाद वह सज्जन महासुन्न में जाकर ठहर गए। यह हालत गृहस्थी के लिए ठीक नहीं है। उसने बहुत से महात्माओं को अपनी हालत बताई, परन्तु कोई उसको मार्गदर्शन नहीं कर सका। अन्त में किसी के कहने पर उसने मुझे पत्र लिखा और मैंने उसे वैशाखी पर होशियारपुर मिलने को कहा। वैशाखी पर वह मुझे वहां मिला। मैंने उसकी हालत सुनी और उसको इस महासुन्न से निकलने की विधि बताई और उसने वहां मेरे सामने बैठे हुए उस विधि का प्रयोग किया और अब वह सज्जन लगभग 7 या 8 वर्ष से बहुत ऊंचे साधन के अनुभव में है जहां न शब्द है न प्रकाश, केवल अपने आप में लीन होने की स्थिति है। मैंने उसकी स्थिति के अनुसार यह उचित सलाह दी कि अब आपको अभ्यास की कोई जरूरत नहीं है। आपके प्रारब्ध कर्म जो कुछ शेष है, उन्हें भोग लें। शरीर छोड़ने पर आपकी सुरत निज रूपी उस परमात्मा तत्व के समुद्र में लीन हो जाएगी।

कहने का भाव यह है कि हर साधक की साधना भी भिन्न-भिन्न है। पुस्तकों में यह बात नहीं लिखी जाती है। जो कुछ लिखा हुआ है वह किसी खास साधक की बात है। अन्तिम मंजिल वालों को यह मेरे लेख मार्गदर्शन करेंगे। साधक किसी भ्रम शंका में न पड़े। सुरत शब्द का सहज साधन करते रहें और जो अनुभव आपका होगा वही सही होगा, चलते रहें, पुस्तकों से अपना मेल न करें। आपकी प्रकृति, अधिकार, संस्कार के अनुसार आपका अनुभव होगा और मंजिल परम शांति है। यदि आपको साधन से शांति मिलती है तो वह ठीक है। शांति क्या है? मन में विचारों व भावों का न उठना और उस एक अवस्था में आ जाना जिसको कोई भ्रम या संशय न रहे। यानी सब प्रकार के प्रश्नोत्तरों से मुक्त हो जाना। जो हमारा जीवन है उसका उस साक्षी अवस्था में रहकर जीवन व्यतीत करना ही शांति है। यह जब मिलेगी साधन और सत्संग से मिलेगी। साधन नाम है शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्थाओं का अनुभव करना और सत्संग नाम है अपने अनुभव का समर्थन हो जाना। अतः इस दुनिया में यदि कोई आत्मिक शांति चाहता है तो उसके लिए आवश्यक है कि वह सुमिरन, ध्यान और भजन करता हुआ अपने अन्तर शब्द और प्रकाश को प्रकट करें जो उसका अपना ही निज रूप है।

✽

स्थूल, सूक्ष्म व कारण रचना (प्राकृतिक रचना)

इस रचना में प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों के भंडार व मंडल बने हुए हैं। जैसे गर्मी का भंडार सूर्य, जल का भंडार समुद्र, वायु का भंडार वायुमंडल आदि-आदि। यह अग्नि, जल, पृथ्वी आदि स्थूल तत्व हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म और कारण प्रकृति में भी भिन्न-भिन्न शक्तियों के मंडल या भंडार हैं। शास्त्रकारों ने इन शक्तियों के भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं, यह सब मिली-जुली शक्तियों के नाम हैं। जैसे स्थूल प्रकृति का नाम विराट पुरुष या ईश्वर रख है। सूक्ष्म प्रकृति के मंडल या लोकों का नाम ब्रह्म और कारण प्रकृति के मंडल या लोकों का नाम सत या हक रख हुआ है। यह सब समझाने-बुझाने के लिए है। जिस अवस्था से यह प्रकृति उत्पन्न या प्रकट होती है उसे जात (स्वरूप) अकाल, अनामी कह देते हैं। सतलोक या कारण प्रकृति में भी शरीर होते हैं और उनके अन्दर जो बोध शक्ति होती है उसका नाम हंस (सुरत) रखा है। यह बोध शक्ति वास्तव में जात, अकाल, अनामी या दयाल जो कि एक अवस्था या तत्व है, उसमें क्षोभ (हलचल) आने से उत्पन्न होती है। यह रचना बहुत लम्बी-चौड़ी है और ध्यान-योग में इसका अनुभव किया जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकृति के महापुरुष इनका अनुभव करते हैं। एक ही मनुष्य सब लोकों या मंडलों तथा भंडारों का अनुभव नहीं कर सकता। जैसे वैज्ञानिकों ने अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार खोज की है। इस ज्ञान की खोज का केन्द्र त्रिकुटी यानी 'ओ · म्' का स्थान है। जिसकी जितनी गहरी समाधि तथा एकाग्रता होगी और जिस वस्तु या ज्ञान की इच्छा को लेकर योगी समाधि लगायेगा उसको उसी का अनुभव होगा। इस ज्ञान में भी बाहर के संस्कार विशेष महत्व रखते हैं।

मनुष्य की सुरत शब्द, प्रकाश के सहारे अलख, अगम व अनामी पद से उतरती है और इसी के सहारे से यह वापिस अपने अनामी धाम में पहुंच जाती है। इस सुरत या बोध शक्ति का पैदा होना, धार या किरणों के सिलसिले में नीचे आना, यहां अपना खेल खेलना और फिर अपने

निज रूप में मिल जाना सब मौज के आधीन है। यह रचना का प्राकृतिक नियम है जो हमेशा चलता ही रहता है। ये सुरते बनती रहती हैं और टूटती रहती है। जैसे सागर में बुलबुले बनते रहते हैं और टूटकर उसी में समाते रहते हैं। यह रचना अनादि है, किसी ने इसका अन्त नहीं पाया। बस अनुभव से जब मनुष्य अपना निज रूप पहचान लेता है तो उसे यह रहस्य समझ में आ जाता है और उसकी सब शंकाएं व भ्रम दूर हो जाते हैं तथा उसका आवागमन का वहम समाप्त हो जाता है। फिर शरीर त्यागने के बाद उसे न कहीं आना है न कहीं जाना है। प्रत्येक ने अपने-अपने रूप में मिल जाना है। शरीर मिट्टी में मिल जाता है। उसके विचार ब्रह्माण्ड में चले जाते हैं। आत्मा शब्द व प्रकाश में और सुरत अपने निज रूप में विलीन हो जाती है, परंतु जब तक मनुष्य को यह ज्ञान नहीं होता है तो उसका शारीरिक, मानसिक व आत्मिक सुरतपने का अहं भाव समाप्त नहीं होता है और यह जीवन का चक्र चलता रहता है। जैसे नीचे कबीर के शब्द में लिख है -

अब हम अवगति से चल आए।

माया ने जग भरमाए, मेरा भेद मर्म नहीं पाया।

नहीं हम जन्मे गर्भ बसेरा, बालक हो दिखलाए।

काशीपुरी जंगल विच डेरा, जहां जुलाहे ने पाए।।

हते विदेह देह धरि आए, काया धर कबीर कहलाए।

युगन-युगन के बिछड़े हंसा, जिन्हें उबारन आए।।

ना मेरे रक्त हाड नहीं चामा, शब्द रूप धरि आए।

अलख पुरुष कर्ता अविनाशी, बन्दी छोड़ कहाए।।

हम सर्वबंगी सतलोक के, घर-घर बासा पाए।

आत्म रूप प्रकट है जग में, सोई नाम कहाए।।

देह अपार पार पुरुषोत्तम, सतगुरु हो जग आए।

कहें कबीर सुनो भाई साधो, सत ही नाम लखाए।।

ऊपर कबीर साहब ने उस समय के अनुसार इस ज्ञान को रहस्य और आकर्षक भाव से कहा है कि यह सुरत यहां खेलने आई है, जो मालिक का अंश रूप है। जहां से यह हमारी सुरत आती है, वह अलख, अगम व अनाम की अवस्था है। जब यह सुरत नीचे आती है तो उसमें चेतनता पैदा होती है और चेतनता में उसकी जागृत, स्वपन और सुषुप्ति अवस्थाओं का नाम सत, अलख और अगम है। जब यह चेतनता में है तो यह जागृत अवस्था है, मानसिक चेतनता में है तो यह स्वपन अवस्था है फिर गहरी नींद की अवस्था है। इसी तरह सुरत का जो अपना अस्तित्व है उसकी भी तीन अवस्थाएं हैं। शरीर की अवस्थाओं के नाम जागृत, स्वपन और सुषुप्ति है। मन की अवस्थाओं के दूसरे नाम हैं। ऋषियों ने ब्रह्मण्ड की जाग्रत, स्वपन और सुषुप्ति का नाम विराट अव्याकृत और हिरण्यगर्भ रखा है। जिस तरह इस सृष्टि में जीवन की रचना है जैसे मनुष्य यहां एक दूसरे को देखते हैं, मिलते हैं, बात करते हैं उसी तरह से हमारा अस्तित्व (Self) उस लोक में रहता है। वहां रहने वाली करोड़ों-अरबों ऐसी सुरते हैं जिनकी कोई गिनती नहीं है। सतलोक में सुरत की जाग्रत अवस्था है। वहां भी ऐसी ही रचना है जैसी इस सृष्टि की है। अन्तर यह है कि यहां जो सुरतें हैं जो उस अस्तित्व के अणु हैं उनको हंस कहते हैं। वह न खाते हैं न पीते हैं न उनका कोई शरीर होता है। उनका जो भोजन, प्यास व पोशाक है वह मस्ती (आनन्द) है। ये सुरतें (रूहें) इस लोक व ऊपर के लोकों में बिना शरीर व मन के होती हैं। वह लोक जिसको सतलोक कहते हैं वहां सदा हंस विलास करते हैं। यहां इस लोक में सभी जीव-जन्तु, शरीर, मन,

ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के साथ रहते हैं परन्तु वहां उस लोक में न शरीर है न मन है न आत्मा है। शरीर और मन के नष्ट होने पर जो हमारे अस्तित्व का जीवन है वह अजर, अमर, सत्य व अविनाशी है। जब तक मनुष्य को इस रहस्य का ज्ञान नहीं होगा, उसका जन्म-मरण समाप्त नहीं होगा और वह सतलोक में नहीं जा सकता।

*

मनुष्य का स्वरूप क्या है ?

इस विषय में मैंने पहले भी चर्चा की है कि मनुष्य शरीर में शरीर, मन, आत्मा और सुरत यह चार तत्व काम करते हैं। शारीरिक दृष्टिकोण से हम गर्मी या ताप हैं। जहां शरीर में यह गर्मी नहीं रहती, वहां यह भान बोध भी नहीं होता। यह गर्मी (ताप) सूर्य से आई और खुराक द्वारा वीर्य में मिली और शारीरिक जीवन की शुरुआत हुई। सूर्य ताप का भंडार स्वयं किसी से निकला है क्योंकि यह ताप या गर्मी अकेली वस्तु नहीं है। यह दो वस्तुओं की गति या रगड़ का परिणाम है। इसलिए हमारा स्वरूप गर्मी से भी सूक्ष्म कोई अन्य वस्तु है जिसे हम सूक्ष्म प्रकृति या मन या ब्रह्म कह सकते हैं। स्वयं ब्रह्म में गति का मादा मौजूद है इसलिए हमारा स्वरूप सूक्ष्म प्रकृति से भी ऊपर है। हम सत भी नहीं है क्योंकि सत में भी द्वन्द्वपना है, वहां आनन्द है और आनन्द हमेशा द्वन्द्व की रचना में होता है। हम सत के भी आधार हैं। सत, विचार या मन और देह हमसे प्रकट होते हैं और खेल खेलते हैं। हम न हों तो आनन्द, विचार और देह सब ही नष्ट हो जाते हैं।

अब प्रश्न यह है कि यह सुरत जो कि परमात्मा का अंश है, एक शरीर से निकलकर कैसे दूसरा शरीर धारण करती है ?

इसका उत्तर यह है कि इस मनुष्य शरीर में शारीरिक, मानसिक व आत्मिक भाव कुछ और वस्तु है और जो शारीरिक, मानसिक व आत्मिक भाव का आधार है यानी जिसके सहारे इस शरीर, मन व आत्मा का खेल होता है, वह और वस्तु है। वास्तव में इसका ज्ञान उसी सज्जन को हो सकता है जिसने योग साधन करके अपने निज स्वरूप को इनसे अलग करके अनुभव कर लिया हो। यह बात दूसरे की समझ से बाहर है।

शारीरिक जीवन जैसा आप समझते हैं, देह के अहसास का खेल है। परन्तु किसी समय यदि आपका ध्यान किसी विचार में लीन होकर देह की तरफ से बेसुध हो जाए तो आपको देह का भान (अहसास) नहीं होता। इससे यह सिद्ध हुआ कि शारीरिक जीवन का बोध करने वाली कोई

और वस्तु है। दूसरा जीवन है मन और विचार का। जब हमारा ध्यान या तवज्जह विचार करते-करते मन से भी बेसुध हो जाता है यानी विचार शून्य हो जाता है तो हमें मानसिक जीवन का भी बोध नहीं रहता। इसकी एक मिसाल गहरी नींद की अवस्था है तो इससे यह प्रमाणित हुआ कि असली वस्तु कोई और है तथा मानसिक, शारीरिक जीवन कुछ और है। इसी प्रकार यदि यह सुरत इस देह, मन, आत्मा को अपनी तरफ आकर्षित न करें तो इनका सब खेल ही बन्द हो जाता है। विषय बहुत सूक्ष्म है। तो अब आप समझ गए होंगे कि यह सुरत क्या है? यह एक प्रकार की बोध शक्ति है जिसमें सरूर या आनन्द रहता है और इस आनन्द में विचार की फुरना नहीं होती। इससे आगे एक और अवस्था आती है, जहां इस आनन्द के बोध या ज्ञान का भी अभाव हो जाता है और हमारा अस्तित्व अपनेपन को खोकर उस तत्व में ही लीन हो जाता है। यह इस जीवन की दृष्टि से अन्तिम अवस्था और रचना के दृष्टिकोण से जीवन की आदि अवस्था है जिसका नाम मालिक कुल, अनामी या अकाल पुरुष रखा हुआ है। मुझे इस अवस्था का अपने जीवन में दो बार अनुभव हुआ है। इस अवस्था में चले जाने के बाद फिर उत्थान होता है जिसमें चैतन्यता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह चैतन्यता वास्तव में हमारी जात (स्वरूप) है जो इस देह में आकर अपने को प्रकट करती है।

राधास्वामी वाणी में इस परमात्मा की अंश सुरत का सतलोक में ठहराव व किरण रूप में नीचे की तरफ उतराव का पूरा वर्णन बहुत ही सादे शब्दों में लिखा है कि यह सुरत मौज से नीचे मंडल व अपना ठहराव बनाती हुई यहां तक कैसे पहुंचती है? फिर यहां खेल खेलकर जब उपराम हो जाती है तब कैसे यहां से वापिस अपने निज धाम में जा सकती है? यह खेल प्राकृतिक व मौज का है और सुरत का यहां से शरीर छोड़कर वापिस जाने का अलग-अलग ढंग हैं।

यहां इस शरीर त्याग के बाद जात की अंश यह सुरत अपना सूक्ष्म शरीर यानी विचारों का शरीर रखती है। देह से निकलने के बाद वह उन विचारों की तरह खिंचती या झुकती है जिससे उसको जीवनभर अनुराग, दिलचस्पी या प्रीति रही है। इसलिए विचार का वह सूक्ष्म तत्व उसको

अपने जैसे विचारों की ओर ले जाता है और वह ऐसी जगह जाकर देह धारण करता है जहां उसके विचार की आसक्ति फुर सके या बढ़ सके। अर्थात् जिनका सम्बन्ध पंच भौतिक पदार्थों से होता है वह स्थूल देह धारण करते हैं और जिनका रूझान भौतिक पदार्थों से नहीं होता, वह ऊपर के सूक्ष्म पदार्थ के लोकों में चले जाते हैं तथा जिनका संबंध आत्मिक जगत से होता है वे सीधे आत्मिक स्थानों के लोकों की ओर झुकते हैं। कोई-कोई जिसका सम्बन्ध केवल निज रूप, अकाल या अनामी पुरुष से होता है, वह व्यक्तित्व से छुटकारा पाकर निजस्वरूप में लय हो जाता है। अब आप समझ गए होंगे कि परमात्मा की अंश इस सुरत का कोई रूप नहीं है। प्रकाश व शब्द प्रकृति या मादे से प्रकट होते हैं और अपने चारों तरफ विचारों का यानी सूक्ष्म पदार्थ का खोल या गिलाफ रखते हैं और प्रकृति के नियमानुसार उस गिलाफ के प्रभावों से प्रभावित होकर दूसरे गिलाफों की ओर झुकते हैं। सोचना, समझना, गति, विवेक, विचार सब कुछ मादे की मिलोनी का गुण है। इस मादे की संयुक्त सुरत का नाम कर्त्ता पुरुष या काल पुरुष है। योनि, आवागमन आदि सब काल पुरुष की दया का नतीजा है। यदि कोई व्यक्ति काल पुरुष की सीमा से बाहर हो जाए तो फिर वह आवागमन से छूट जाता है। इसी के लिए सन्त योग साधन कराकर जीव को इसी ही जीवन में अनुभव करा देते हैं और वह साधन अभ्यास से काल की सीमा पार कर जाता है।

यह काल की सीमा क्या है? योगी अपने साधन में विचार, संकल्प, नजारें, चमत्कार, सूक्ष्म लोक-लोकान्तर आदि जो देखता है या महसूस करता है अथवा अपने इष्ट का स्वरूप या रंग इत्यादि को देखता है और उसे सत्य मानता है तो वह काल और माया है। गुरु कृपा करके, अगम का भेद देकर उसे काल की हद के आगे का रास्ता बता देता है। जैसे कहा है -

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तज देश भ्रम का।

पूरा शब्द पुस्तक के शुरु में दिया हुआ है। नीचे कबीर साहब का एक शब्द और पढ़ें -

चल हंसा सतलोक हमारे। छोड़ो यह संसारा हो।।

यह संसार काल है राजा। कर्म का जाल पसारा हो।।

चौदह खण्ड बसे जाके मुख । सबका करत आहारा हो ॥

जार बार कोयला कर डारत । फिर-फिर ले औतारा हो ॥

ब्रह्मा विष्णु शिव तन धर आए । और को कौन विचारा हो ॥

सुर नर मुनि सब छल-छल मारे । चौरासी में डारा हो ॥

मध्य आकाश आप जहां बैठे । जोति शब्द उजियारा हो ॥

सेत स्वरूप शब्द जहां फूले । हंसा करत बिहारा हो ॥

कोटि सूर चन्द्र छिपि जैहि । एक-एक रूप उजारा हो ॥

वही पार एक नगर बसत है । बरसत अमृत धारा हो ॥

कहे कबीर सुनो धर्मदासा । लखो पुरुष दरबारा हो ॥

यह सब जीव को चेतावनी दी जा रही है कि काल के चक्र से निकलने से ही वह इस जन्म-मरण के चक्र से निकल सकता है । सन्त सज्जन जीव को चेताते आ रहे हैं कि भाई तू सदा रहने वाला आनन्द व परम शान्ति चाहता है तो तू होश कर और अपने आपको पहचान, तू परमात्मा का अंश है । अतः तू सतगुरु से मिल और उनका संग कर । बिना सतगुरु आज तक जितने वेश बनाकर भटके हैं उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ है ।

❖❖❖❖❖❖❖

❖❖❖❖

❖

सुख-दुख की उत्पत्ति

मनुष्य की सुरत जो परमात्मा का ही अंश है और जो आनन्द रूप है, उस पर चारों तरफ सूक्ष्म तत्वों का गिलाफ चढ़ा होता है और जब इस सुरत के शरीर धारण करने पर उसका नीचे की तरफ रूझान होता है तो इसमें संकल्प, बुद्धि व विवेक पैदा हो जाते हैं। अर्थात् हमारी जात, सुरत या मूल तत्व पर पहले सतलोक में केवल चैतन्यता का गिलाफ होता है जो आनन्द रूप होता है। फिर इसके नीचे उतरने पर सूक्ष्म तत्व का गिलाफ चढ़ जाता है और फिर सूक्ष्म तत्व या मादे के स्पर्श से इसमें संकल्प-विकल्प व विवेक उत्पन्न हो जाते हैं जो बढ़ते जाते हैं। इस सूक्ष्म तत्व के चारों तरफ स्थूल तत्व का एक और घेरा या गिलाफ होता है जो आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के रूप में प्रकट होता है। और इस प्रकार इस रचना के रूप में इस सुरत या जात का उतार होता रहता है और वह इस शरीर, मन व आत्मा का बोध रखती हुई खेल खेलती रहती है तथा सुख-दुख, चिन्ता-फिक्र इत्यादि का अहसास करती रहती है।

उदाहरण के रूप में शरीर के परमाणुओं में अनियमितता आ जाने से दुख महसूस होता है। सूक्ष्म अथवा मानसिक शरीर के नियमानुकूल न रहने से जो मन या विचारों से दुख महसूस होता है वह वास्तव में कोई दुख नहीं है और न ही प्रकृति में कोई दुख का सवाल है। जो चीज दुख मनाती है वह न तो शरीर है न मन है और न आत्मा है। वह वह है जो न देखी जा सकती है, न जानी जा सकती है और न उसका कोई रंग-रूप है न नाम। परन्तु सन्तों ने समझाने के लिए उसका नाम सुरत रखा है जो परमात्मा का ही अंश रूप है। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना पड़ता है। यह केवल अनुभव में आ सकती है।

सुरत-शब्द दौऊ अनुभव रूपा, तू तो पड़ा भ्रम के कूपा।।

अब आप ध्यान से समझें कि शरीर संबंधी कोई दोष या गड़बड़ी आने पर शरीर में

परिवर्तन आता है। इससे शरीर में दुख महसूस होता है क्योंकि उस वस्तु को पहले एक खास ढंग से अपना खेल खेलने की आदत थी। अब उसको रूकावट हुई या उसकी आदत में बदलाव आया इसलिए वह तकलीफ महसूस करती है। जैसे शरीर के रक्त-संचार में सुरत की धार बहती रहती है। अब रक्त-संचार में कोई रूकावट आती है तो सुरत दुख महसूस करती है। इसी प्रकार मानसिक रूप से मनुष्य को विशेष विचार या भाव रखने की आदत होती है और जब बाहर के प्रभावों या अन्य कारण से उसके विचार या भाव के अनुसार कोई कार्य होता नहीं दिखता तब वह तकलीफ या दुख महसूस करता है। बात बहुत सूक्ष्म है, ध्यान से समझने की जरूरत है तो इस बात से यह प्रमाणित है कि दुख न शरीर में है, न मन में है बल्कि सुरत के रूझान को जबरदस्ती बदलने में है।

सन्त सज्जन इस दुख को दूर करने की बहुत आसान विधि बताते हैं, ध्यान योग की। सुमिरन और ध्यान से अपनी सुरत को शरीर और मन से ऊपर ले जाओ। ध्यान बनने पर कोई दर्द, दुख व तकलीफ का अनुभव नहीं होगा। यह बात सन्त पहले दिन ही जीव को नाम के रूप में समझा देते हैं। परन्तु इस मनुष्य के निगुरेपन की हद है। वह बातें तो बहुत करता है परन्तु सुमिरन, ध्यान नहीं करता है। कबीर साहब का एक शब्द पढ़ें जो यह भेद बता रहे हैं -

तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।

उदय अस्त की बात कहत हूँ, सबका किया विवेका हो।।

घाटे बाढ़े सब कोई देखा, क्या गिरही वैरागी हो।

शुक-आचार्य दुख के कारण, गर्भ से माया त्यागी हो।।

जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना हो।

आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहीं सूना हो।।

सांच कहे तो कोई न माने, झूठा कहा न जाई हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ॥

अवधू दुखिया भूपत दुखिया, दुखी रंक विपरीती हो ।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ॥

यहां 'सन्त दुखी मन जीती' वाली बात से स्पष्ट है कि संतों व योगियों की योग साधना के अभ्यास से इतनी ध्यान की एकाग्रता हो जाती है कि जब भी उन्हें यहां किसी प्रकार का शरीर व मन में दुख का अनुभव होता है तो वे तुरंत अपनी सुरत को बड़ी आसानी से शरीर व मन की तरफ से हटा लेते हैं जिससे उन्हें दुख व तकलीफ का आभास नहीं होता । इसके साथ ही इस शब्द योग के साधन के साथ-साथ यदि उनमें कोई सांसारिक या जीवन की इच्छा न हो तो उन्हें कदापि कोई कष्ट नहीं होगा । परन्तु यहां एक बात ध्यान में रखने वाली है कि वे इन दुख व तकलीफों से तभी तक बेखबर रहते हैं जब तक वे समाधि की अवस्था में रहते हैं । जब उनकी सुरत शरीर में आती है तो उन पर भी बाहर का प्रभाव पड़ता है । हाँ यदि इस नाम के जप के साथ-साथ यदि कुछ दूसरी बातों का ध्यान रखा जाए तो शारीरिक व मानसिक कष्ट बहुत कम होगा । जैसे - शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य, सात्विक भोजन, पाचन शक्ति को ठीक रखना, शरीर व मन की पवित्रता आदि ।

अतः इस सुख-दुख व आवागमन से बचने के लिए शास्त्रों के वाणी जाल में न फंसकर अपनी सुरत को बाहरी सतगुरु के मार्गदर्शन में अपने अन्तर निज रूप या सार शब्द में लगाना है ।
क्योंकि - वाणी जालम् महाजालम् ।

यह आवागमन न योग से छूटता है न जप-जप से, न सन्ध्या तर्पण से और न सार ज्ञान से, अपितु सार ज्ञान को समझकर अपने आपको अपने निज स्वरूप सतगुरु से जोड़े रखने से छूट

सकता है। जब तक मनुष्य अपने निज स्वरूप के अतिरिक्त बाहरी किसी भी रूप, रंग, देवी-देवता, किसी इष्ट, पीर-पैगम्बर को मानता है तो वह बाहरमुखी है और जो लोग अन्तर में साधन अभ्यास करते हैं और अपने अन्तर में प्रकट होने वाले तरह-तरह के दृश्यों, नजारों व रूप से प्यार करते हैं तो वह भी आवागमन से दूर हैं। हाँ, यह हो सकता है कि अपने अन्तर में योग-साधना करने वाले शरीर छोड़ने पर ऊपर के लोकों में चले जाएं, जैसे - उनके विचार, भाव व आनन्द के संस्कार हैं।

परन्तु सन्तों ने सतगुरु को शब्द रूप माना है और शब्द आकाश का गुण है तथा आकाश प्रकृति का सबसे ऊंचा मंडल है। आकाश तत्व केवल स्थूल ही नहीं है अपितु सूक्ष्म व कारण तत्व भी है। माया में भी आकाश है और जब तक सुरत कारण माया के आकाश तत्व के शब्द में जो कि सार शब्द है, लय होने का अभ्यास नहीं करेगी तब तक आवागमन समाप्त होने वाला नहीं है।

अतः आवागमन से छुटकारा पाने का यही सच्चा तरीका है कि अन्तरमुखी शब्द गुरु को सब कुछ मानकर अपनी सुरत को प्रेम, उमंग व विश्वास से इसके साथ लगाए रखो। आपको शरीर रहते ही इसका अनुभव हो जायेगा और तब आप मुक्ति पद या सदा रहने वाले आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। कबीर साहब का यह निम्न शब्द इसी भाव को प्रकट करता है कि जो मनुष्य जीवित रहते ही सब प्रकार के बन्धनों (भाव-विचारों) से मुक्त है वही वास्तव में सुख-दुख से रहित है -

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो।

जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख-सुख भुगता हो॥

देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहां होई हो।

तीर्थ वासी होये न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो॥

जीवित भ्रम की फांस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो ।

जल प्यासा जैसे नर कोई, सुपने फिर प्यासा हो ॥

होए अतीत बन्धन से छूटे, जहां इच्छा तहां जाई हो ।

बिना अतीत सदा बन्धन में, कितहू जान न पाई हो ॥

आवागमन से गए छूट के, सुमिरे नाम अविनाशी हो ।

कहें कबीर सोई जन गुरु हैं, काटी भ्रम की फांसी हो ॥

*

विभिन्न लोक-लोकान्तर

यह सारी सृष्टि जो हम देख रहे हैं, प्रकृति की बनी हुई है और प्रकृति की किरणें प्रत्येक लोक से नीचे आ रही हैं और हमारी किरणें ऊपर को जा रही हैं। हमारा स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर इन ऊपर के लोकों से बनता है। ऊपर नक्षत्र, तारागण, शिवलोक, ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, सतलोक, अगमलोक आदि सभी लोकों की किरणें विभिन्न रूपों में यहां नीचे की ओर आ रही हैं और वही किरणें हमारे शरीर में विभिन्न रूप धारण किए हुए हैं जो व्यक्ति ध्यान साधना में अपने अन्तर जाकर इन लोकों पर बैठक करता है या वहां जाकर ठहरता है तो उसका अपने आप ही ऊपर के लोकों से सम्बन्ध हो जाता है। जिस तरह ये रेडियो, टेपरिकार्ड या टेलीविजन काम करते हैं। इनका संबंध जहां तक जोड़ा जाता है, वहीं तक ये काम करते हैं। इसी प्रकार हमारे अन्तर जितनी श्रेणियां हैं, यह भिन्न-भिन्न लोकों के भिन्न-भिन्न केन्द्र हैं। स्थूल शरीर के केन्द्र का संबंध सूर्य, चन्द्रमा आदि से है और मन के केन्द्र का संबंध ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, रामलोक आदि से है तथा कारण प्रकृति के केन्द्र का संबंध आत्मलोक व सतलोक से है। इस प्रकार जो मनुष्य अपनी योग साधना में अन्तर जाकर प्रकृति के जिस केन्द्र से संबंध रखता है उसको उसका ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के तौर पर – यह पितृलोक क्या है? हमारे वह पूर्वज जिनके रक्त और वीर्य से हमारी देह बनी है उनकी प्रकृति विचार व संस्कारों का प्रभाव या अंश हमारे स्थूल व सूक्ष्म शरीर के अन्दर मौजूद है अर्थात् हमारे शरीर की प्रकृति उनकी प्रकृति से मिलती है। और जब हमारी सुरत बाहरी विचार और शारीरिक भान को भूलकर अन्तर में एकाग्र होती है या दिमाग के अन्दर उलटकर दाखिल होती है तो वे विचार व भाव जो हमारे पूर्वजों में मौजूद थे और जिनके प्रभाव हमारे दिमाग या सूक्ष्म शरीर में मौजूद हैं, दूरबीन के सिद्धांत के अनुसार बड़े मालूम होते हैं या ख्याली रूप धारण कर लेते हैं या रूप धारण किए प्रतीत होते हैं। वे पुरुष किसी न किसी शक्ल

में नजर आते हैं। यह नहीं है कि वह मिलते हैं परन्तु जो भेद से परिचित नहीं है वह इन दृश्यों को सच समझ लेते हैं।

कहने का भाव यह है कि पितृलोक आदि केवल विचार या संस्कार की अस्थायी उपज है। उनकी कोई असलियत रचना में नहीं है। उनका दृष्टिगोचर होना केवल विचार और संस्कारों से संबंध रखता है जो हमें सदैव विरासत (उत्तराधिकार) में मिलता है। अब समझने वाली बात यह है कि बाहर भी पितृलोक आदि हैं क्योंकि जिस प्रकार की प्रकृति हमारे पूर्वजों में थी वह उन्होंने बाहर से ही ली थी और वह प्रकृति अब भी बाहर मौजूद हैं। जब मनुष्य अपने अन्तर उस स्थान पर ध्यान ले जाता है तो उसका संबंध रेडियो के सिद्धांत के अनुसार धारों के द्वारा बाहरी मंडल से हो जाता है और मनुष्य के भावों व विचारों का प्रभाव भी उन मंडलों तक जाता है। मनुष्य अपने ध्यान की एकाग्रता में अपने स्थान पर रहता हुआ दूर देशों या स्थानों की सैर कर सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपना शरीर छोड़कर वहां जाता है अपितु रेडियो के सिद्धांत के अनुसार वह वहां के हालात व स्थिति को देख सकता है। लेकिन इस प्रकार का आदमी अपने मुख्य ध्येय से गिर जाता है। इसी प्रकार शिव लोक, विष्णु लोक आदि भी रचना के लोक हैं। वहां तेज रूप या प्रकाश रूप दुनिया बसती है। यदि किसी व्यक्ति में इस प्रकार की रूचि या आसक्ति है तो वह एकाग्रता का अभ्यास हो जाने पर इस शरीर में रहते हुए वह दृश्य देख सकता है। अर्थात् हर व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार उसी प्रकृति वाले लोकों का दृश्य देख सकता है। क्योंकि कुदरत की तमाम शक्तियां आंशिक रूप में मनुष्य देह में मौजूद हैं। जैसे कहा गया है - 'पिण्डे सो ब्रह्मण्डे'।

अब हिन्दुओं को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि शब्दों द्वारा विशेष-विशेष प्रकार के ख्याल व संस्कार मिले हुए हैं। इसलिए वह अपने संस्कारों के कारण एकाग्रता की दशा में अपने अन्दर वैसे ही रंग, रूप आदि के नजारे देखते हैं और इस्लाम या अन्य धर्म वाले अपने बाहरी भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कारों के अनुसार अन्य आन्तरिक दृश्य देखते हैं। इसी प्रकार कई सज्जन

गई हुई रूहों या आत्माओं से बात कराते हैं तथा और कई प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्य करते हैं। यह सब ध्यान की एकाग्रता के मन के मंडल की बातें हैं। यदि मन पवित्र है तो साधक त्रिकुटी के ध्यान में जो जानना चाहता है, उसे उसका मन ही वह उत्तर दे देता है जिसे वह जानना चाहता है। जैसे ये जितने वैज्ञानिक सज्जन हैं और इन्होंने जो खोज की है तो उन पर भी यही सिद्धांत लागू होता है क्योंकि जाने या अनजाने में जब उनका मन त्रिकुटी के स्थान पर एकाग्र हो जाता है तब इनका जो प्रयोग या परीक्षण जिसे वह जानना या करना चाहता है तो अनायास ही उन्हें इसका उत्तर मिल जाता है या उन्हें कोई नई सूझ सूझ जाती है। यह सब सूक्ष्म लोक का ज्ञान है। अर्थात् सब प्रकार की सिद्धि-शक्ति मन की एकाग्रता का फल है और साधक इसे प्रकृति के अनुसार अनुभव करता है। इस मन की एकाग्रता से ही साधक अपने स्थान पर बैठा हुआ इस ध्यान योग के साधन से जो चाहे ज्ञान इस लोक का या सूक्ष्म लोक का कर सकता है।

मेरे गुरु महाराज पंडित फकीरचन्द जी के इस प्रकार के बहुत से प्रयोग हैं जो वह ध्यान की एकाग्रता में अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही दूर के स्थान की बात बता देते थे। इसी प्रकार का प्रयोग मैं अपने अनुभव के अनुसार बताना चाहता हूँ कि एक समय मैं गुवाहाटी (असम) में भर्ती अधिकारी था। वहाँ मेरे इलाके में एक पंडित जी का बड़ा होटल था। हम वहाँ बैठे थे तो एक सज्जन आया और वह उस पंडित के सामने बुरी तरह रोने लगा। पूछने पर पता चला कि उसका इकलौता लड़का जो दसवीं कक्षा की परीक्षा देने गया था, उसे कुछ लोग उठाकर ले गये। पंडित जी ने इस बात पर बहुत दुख प्रकट किया और मेरे मन पर भी उसके दुख का प्रभाव पड़ा। मैंने कहा, आप क्या काम करते हैं? उसने उत्तर दिया कि मेरे पास भी एक होटल है। मैं उसके साथ उसके होटल में गया, क्योंकि मैं उसकी मदद करना चाहता था, परन्तु मैंने वहाँ जाकर देखा कि पंडित जी बहुत लम्बे चौड़े व्यापार में उलझे हुए थे और जो काम मैं उससे कराना चाहता था वह उसके योग्य नहीं थे। मैंने उसकी पत्नी को बुलाया जो अपने लड़के के लापता होने से बहुत दुखी थी और रो रही थी। मैंने उसे अलग ले जाकर यह ध्यान का तरीका बताया कि आप अपनी दोनों

आंखों के ऊपर माथे के बीच अपने लडके की तस्वीर या फोटो बनाओ और यह विचार रखो कि वह जल्द ही दो-तीन महीने के अन्दर-अन्दर घर आ जाए। उसने जैसा मैंने कहा, वैसा किया और डेढ़ महीने के अन्दर उसका लड़का घर आ गया।

दूसरा उदाहरण उस समय का है जब मैं वैशाखी पर होशियारपुर गया हुआ था और वहां परम दयाल जी की श्रद्धालु जो कैथल के किसी बैंक मैनेजर की पत्नी थी वह अपने लड़के के लापता होने के कारण बहुत दुखी थी व रो रही थी। उसको भी मैंने वही ध्यान व इच्छा का ढंग बताया और पांच-छह महीने में उसका लड़का भी घर आ गया। इसी प्रकार की एक घटना अभी थोड़े दिन पहले की है जब मैं सिरसा के नजदीक किसी गांव में सत्संग देने गया हुआ था। वहां एक नवयुवक जो बाल-बच्चों वाला था, वह मानसिक स्थिति ठीक न होने के कारण हस्पताल से ही लापता हो गया था। उसके घर वाले बहुत दुखी थी। मैंने वहां डॉ. कमला के द्वारा उसकी पत्नी व उसकी माँ को भी यही उपाय बताया और वह नवयुवक भी महीने-दो महीने में घर वापिस आ गया। यह सब शक्ति मनुष्य के ध्यान योग में हैं। ध्यान योग से वह जैसा चाहे, जो चाहे कर सकता है। लेकिन जो व्यक्ति अपने निज घर जाना चाहते हैं उन्हें इस सिद्धि-शक्ति में नहीं उलझना चाहिए, नहीं तो वह आवागमन में ही उलझे रहेंगे।

अब मेरी स्थिति यह है कि मैं पहले दिन से ही इस सूक्ष्म लोक के साधन से ऊपर चला गया। अब अगर मैं चाहूँ तो भी यह काम नहीं कर सकता हूँ। और अब जो मैं आचार्या डॉ. कमला के कहने से यह पुस्तक लिख रहा हूँ, यह अपनी मंजिल से बहुत नीचे आकर काम कर रहा हूँ। यानी काल और माया के चक्कर में आकर न चाहते हुए भी यह काम कर रहा हूँ। यह जानते हुए कि यह काम अब मेरा नहीं है। फिर भी अपनी मंजिल से गिरकर यह काम कर रहा हूँ। शायद यह मेरा कोई अशुभ कर्म है जो मुझे नीचे घसीट रहा है। या फिर इसे मेरी मजबूरी समझो। यह शास्त्रों में जितने लोक-लोकान्तरों के नाम लिखे हैं वह सब बाहर व भीतर है परन्तु इनका अनुभव वही योगी कर सकता है जिनके ऐसे संस्कार हैं या ऐसी प्रकृति है। बात मन पर पड़े संस्कारों की है।

सब साधक इनका अनुभव नहीं कर सकते। यदि मैं चाहूँ तो भी इनका अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह है नहीं, भासते हैं। अतः मैं यह साधन नहीं कर सकता। मेरा ध्यान अधिकतर ऊपर की तरफ खिंचा रहता है और सहज ही बहुत ऊँचा शब्द हर समय गूँजता रहता है। बस एक शब्द है और एक उसको सुनने वाली मेरी सुरत है या मेरा निज रूप है। मैं कबीर साहब के शब्द में यह मूल भेद लिख रहा हूँ -

सन्तो मूल भेद कुछ न्यारा, कोई विरला जानन हारा।

मूँड मुंडाये भयो क्या बावरे, जटा जुट सर धारा ॥

क्या भयो पशु सम नग्न फिरत, बन अग्नि लगासे छारा।

क्या भयो कंद मूल फल खायो, वायु किया अहारा ॥

सीत उष्ण सहि सुधा तृष्णा, तन जीरण कर डाला।

सांप छोड़ बांबी को कूटे, अचरज खेल अपारा ॥

धोबी के बस चलत नहीं कुछ, गदहा क्या बिगाड़ा।

यज्ञ जप तप संयम, व्रत क्या कर्म विस्तारा ॥

तीर्थ मूर्त सेवा पूजा, यह उर के व्यवहारा।

हरिहर ब्रह्मा यह खोजत हारे, धर-धर जग अवतारा ॥

पानी पोथी में क्या ढूँढे, वेद नेति कह हारा।

बिन सतगुरु भक्ति भेद नहीं पावे, भ्रम भरे संसारा ॥

कहे कबीर सुनो भाई साधो, मानो कहा हमारा ॥

सन्त मत में अध्यात्म ज्ञान को बहुत ही आसान बना दिया है। जैसे ऊपर के शब्द में कबीर साहब ने शरीर की वेशभूषा बनाने तथा आत्मिक अनुभव के लिए शरीर के साथ तरह-तरह की छेड़छाड़ करने को एक पाखण्ड बताया है। इस विषय में मुख्य बात पूर्ण सतगुरु की है जो किसीतरह अपने चेहरे व शरीर की अलग आकृति बनाकर अपने आपको साधु या सन्त जाहिर नहीं करता। यह तरह-तरह की वेशभूषा बनाना लोगों को अपनी तरफ प्रभावित करने वाली बात है। यह पहले महापुरुषों ने जो वेशभूषा, ढंग, यज्ञ, तप आदि कई तरह के स्वांग बनाए थे वह शायद उस समय में आवश्यक रहे होंगे। हो सकता है उस समय लोगों की श्रद्धा उनकी वेशभूषा देखकर बनती रही हो। परन्तु आज बुद्धि विज्ञान का युग है। आज विज्ञान बहुत तरक्की पर है और हमारे आध्यात्मिक सज्जन पहले से बहुत नीचे स्तर पर है। अब विदेशों में जब कोई भारतीय महात्मा जाता है तो यह समझा जाता है कि यह यहां हमारे देश से धन लेने आया है और बात भी बिल्कुल सत्य है। यदि महात्मा जी केवल ज्ञान ही देना चाहते हैं तो इस ज्ञान के लिए भारतीयों जैसे अधिकारी दूसरे देशों में नहीं है। भारतीय सज्जन धर्म के विषय में बहुत भ्रम, शंका और अज्ञान में है। बड़े-बड़े राजनेता जो देश का शासन करते हैं वह धर्म के विषय में बिल्कुल कोरे हैं। हमारे देश का सदा से यही उद्देश्य रहा है - 'सादा जीवन, उच्च विचार।'

पहले हमारे देश की यह हालत थी कि वह दुनिया में हर तरह से सम्पन्न था। बीच में कुछ लहर भिक्षा मांगकर खाने की आई जो आज भी प्रचलित है और यह बात केवल महात्माओं की ही नहीं अपितु प्यारे राजनेता भी विदेशों से कर्जा लेना एक शान समझ रहे हैं। और यह जो मुक्ति या आवागमन वाली बात है यह बहुत ऊंची बात है। यह काम भी किसी भूखे या गरीब आदमी

का नहीं है। गरीब जब योग साधन करेगा तो उसके सामने जीवन में जो अभाव है, वही आयेगा। यह साधन है विचार, भाव व संकल्प से ऊपर जाने का।

अब जिस आवागमन की मैं चर्चा कर रहा हूँ उसके लिए आवश्यक है कि हमारा स्वास्थ्य ठीक हो, हमारा मन खुश हो और हमारे सुंदर-सुंदर संकल्प व विचार हों। हमारा शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य ठीक हो और हमारी आर्थिक स्थिति अपने स्तर के अनुसार ठीक हो। यह सब ठीक होने पर ही हम ध्यान योग की बात कर सकते हैं, जिससे हमारी आवागमन से मुक्ति हो सकती है। अब जगह-जगह महात्मा सज्जन व राजनेता प्रवचन और भाषण तो खूब करते हैं परन्तु आध्यात्मिकता व राष्ट्रीयता के भाव कहीं देखने को नहीं मिलते हैं। चारों तरफ क्या हो रहा है? आप देख ही रहे हैं। बात थी आवागमन से छुटकारे की। इससे संबंधित एक शब्द है -

आदि अन्त के मरम को, सत्संग में पाया।

खुली आँख तब तत्व पद, दृष्टि में आया।।

अपने आप में खो गए, भूला निज आपा।

मापा आपे को नहीं, कीया सबका मापा।।

गुरु मिले निज दया से, आपा दरसाया।

अपने आप में थे छिपे, सब ब्रह्म और माया।।

अपने आप का ज्ञान नहीं, औरों को जाना।

सब विधि जान अनजान था, बिन गुरु के ज्ञाना।।

आपे में गुरु ज्ञान था, गुरु आप लखाया।

भरम मिटा दुरमति गई, आपे को पाया ॥

आप आप में आप था, आपे के भीतर ।

आप मिला निज घट मिला, कुछ रहा न बाहर ॥

राधास्वामी की दया, आपे को बूझा ।

आपे में जब लख लिया, सब कुछ तब सूझा ॥

सत्संग में योग साधन से साधक का मन एकाग्र हो जाता है । उसकी बुद्धि अध्यात्म ज्ञान सुनकर उसको समझने के योग्य हो जाती है और वह जब चाहे आसानी से सहज में शरीर व मन से ऊपर यानी समाधिस्थ अवस्था में चला जाता है । और इस समाधिस्थ अवस्था से वह अपने निज रूप या परम पद की अवस्था में चला जाता है जहां कुछ कहने सुनने की बात ही नहीं है । और यह निज रूप ही मनुष्य का मुक्तिदाता है ।

*

जीव-रचना

हमारा जन्म हमारे पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ। इस वीर्य के अन्दर हम एक कीटाणु थे और वही कीटाणु माता के पेट में बढ़ता हुआ बच्चे के रूप में प्रकट हुआ। उस दशा में हमें कोई चिन्ता, फिक्र व विचार आदि नहीं था क्योंकि वहाँ मन नहीं था, केवल जीवन था। और वह जीवन वीर्य से बना और वीर्य पिता के रक्त से बना तथा रक्त उस खाद्य-सामग्री से बना जो उन्होंने खाई थी। वह खाद्य-सामग्री पृथ्वी से उत्पन्न हुई और उसकी उत्पत्ति में सूर्य व तारागणों के प्रभाव सम्मिलित थे जो किरणों द्वारा पृथ्वी पर पड़ते थे। उन किरणों में प्रकाश था, गर्मी थी जो ऊपर के लोकों से पृथ्वी पर आई थी। इससे सिद्ध होता है कि हमारा शारीरिक जीवन उन किरणों का समुदाय है, चूंकि प्रकाश मिश्रित वस्तु है। अतः वास्तव में हमारा अस्तित्व कोई ऐसा है जो प्रकाश या नूर से अलग है। प्रकाश मिश्रित होने के कारण परिवर्तन के नियम के आधीन है और जब हमारा नूर (प्रकाश) स्थूल पदार्थ से मिलता है तो विचार या मन उत्पन्न होने लगता है और हमारा मन या विचार सबके सब उस समय तक हैं जब तक हमारा प्रकाश रूपी स्वरूप इस स्थूल शरीर से संबंध बनाए हुए हैं। जब यह निकल जायेगा तब विचार, संकल्प, विकल्प आदि सबके सब समाप्त हो जायेंगे। विचार पहले भी नहीं थे फिर भी नहीं रहेंगे, क्योंकि ये सब सोच, विचार, चिन्ता, फिक्र आदि हमारे प्रकाश रूपी स्वरूप का इस स्थूल शरीर से मिलने का परिणाम है। यही कारण है कि अभ्यास या योग-साधना की अवस्था में जब हमारी सुरत मस्तिष्क के अन्दर प्रकाश रूप में आती है अथवा सन्तों की भाषा में त्रिकुटी में जाती है तो विचार बन्द हो जाते हैं। इन विचारों को मरने के बाद यूँ भी बंद हो जाना है। अब बन्द हुए या मरने के बाद बन्द हुए। क्योंकि प्रकाश या अग्नि आकाश से उत्पन्न होती है और आकाश का गुण शब्द होता है अतः हम शब्द से भी ऊंचे हैं। यहां हम का मतलब यह सुरत है जो हमारे अन्दर सब खेल कर रही है।

यह पांच तत्व जिनके मेल से यह रचना मानी गई है। स्थूल भी है, सूक्ष्म भी है और कारण भी। सन्तों ने स्थूल तत्वों के मंडल को माया देश, सूक्ष्म तत्वों के मंडल को काल देश और कारण तत्वों के मंडल को चैतन्य देश कहा है। वास्तव में यह तत्वों का ही खेल है। केवल शब्दों का फेर है। हमारे लिए आवश्यक है कि हम अन्तर के शब्द से प्रेमपूर्वक अपनी सुरत लगाए रखें जिससे धीरे-धीरे हमारा लगाव स्थूल, सूक्ष्म व कारण से कम होता जाएगा और हम अपने निजस्वरूप में सहज ही ठहरते जाएंगे। इस सुरत के प्रकाश में ठहरने से सब संकल्प-विकल्प बंद हो जाते हैं। इस प्रकाश या नूर में सूक्ष्म शक्ति होती है और उसका झुकाव नीचे की तरफ या फैलाव में होता है। इसका रूख जब हम ऊपर की तरफ निज स्वरूप की ओर करते हैं तो यह सूक्ष्म शक्ति इकट्ठी हो जाती है और हम महान् आनन्द का अनुभव करते हैं। यदि प्रकाश का अनुभव न भी हो तो कोई बात नहीं, प्रेम से सुरत को ऊपर शब्द में एकाग्र करने से महा आनन्द का अनुभव होता है। आवश्यकता है तो प्रेम, लगन व तड़फ की। उसके आगे केवल शब्द के सहारे से सुरत निज धाम पहुंच जाती है। वास्तव में सन्तों का मार्ग ही शब्द का है। परन्तु मनुष्य अधिकारी नहीं है। मन चंचल है। अतः कहा है -

“शब्द गुरु को कीजिए, बहुतक गुरु लबार।

अपने-अपने स्वाद में, ठौर-ठौर बट मार ॥”

“उतते कोई न आइया, जासे पूछूं जाय।

इतने सब कोई जात है, भार लदाय-लदाय ॥”

“उतते सतगुरु आइया, जाकी बुद्धि मति धीर।

भवसागर के जीव को, खेव लगावे तीर ॥”

वैज्ञानिक इस सृष्टि की रचना जल से मानते हैं। वह कहते हैं कि जल में प्रोटीन नामक एक केमिकल आ जाता है और उसका पानी से मेल होने से स्वाभाविक ही एक सैल बन जाता है और वह कभी-कभी बनता है। इस स्वाभाविक सैल से स्वाभाविक ही मछली बन जाती है।

फिर उससे मछलियाँ पैदा हो जाती हैं और पानी से जैसे सैल्स बनते हैं वैसे ही घास आदि पैदा हो जाते हैं और इस तरह बढ़ते-बढ़ते यह वनस्पति सृष्टि में फैल गई। तो यह जो संसार है, इसमें जब एक सैल बन जाता है इसमें आकर यह अण्डज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज यह स्वाभाविक इस प्रकृति में पैदा होते हैं। उनसे यह रचना होती है। फिर जिस तरह का 'जीन' या बीज होता है वह बीज अपने अन्दर से वृक्ष पैदा करके फिर अपने जैसे बीज बनाता रहता है। जिस तरह पशुओं और वृक्षों के जीन हैं उसी तरह मनुष्य के भी जीन हैं। वह जो जीन आकर मनुष्य का रूप धारण कर लेती है वह अपनी वासनाओं के कारण एक स्थान से निकलकर दूसरे स्थान पर और दूसरे से तीसरे, चौथे स्थान पर चली जाती है। जब मनुष्य मरता है तो उसके सूक्ष्म शरीर की जीन के ऊपर जो वासनाओं का गिलाफ रहता है वह उसको साथ लिए हुए आकाश में उड़ता रहता है और प्रकृति के नियम के अनुसार जहाँ-जहाँ उसने जन्म लेना होता है वहाँ-वहाँ जन्म लेता है अर्थात् उसको अपनी वासनाओं के अनुसार जन्म मिलता रहता है। यह जो जीन है यह निर्गुण से नीचे आकर बनता है। पहले केवल बीज रूप रहता है। जब उसमें जो चुम्बकीय शक्ति पैदा होती है वह उसकी वासनाओं या विचारों के कारण से पैदा होती है। और इन विचारों व संकल्पों की शक्ति से सगुण या स्थूल रूप बन जाते हैं। कहने का भाव यह है कि मनुष्य का विचार ही घना होकर साकार रूप पैदा कर लेता है। जैसे लोग अपने विचार से ही मेरा रूप बनाकर काम ले लेते हैं और मुझे इसका कुछ ज्ञान नहीं होता। और यह जो ओंकार दुनिया के ऊपर है वह अपने संकल्प से सृष्टि को रचता है। अतः हम अपने विचारों से अपनी दुनिया रचते हैं और वह अपनी दुनिया रचते हैं। और जिस मनुष्य की मनन शक्ति कमजोर होती है वह मैथुनी सृष्टि में आ जाता है। पहले संकल्प की सृष्टि थी, निर्गुण सृष्टि थी, फिर चान खान की रचना हुई। अण्डज, जेरज, स्वेदज व उद्भिज से यह सृष्टि पैदा हुई। वह जो सुरत परमात्मा का अंश है वह उस आदि घर से इस मनुष्य शरीर में आ जाती है और मनुष्य अपने संकल्प व विचारों के कारण तब तक यह जन्म-मरण भोगता रहता है, जब तक यह सुरत अपने निज घर नहीं चली जाती है।

इस आवागमन के विषय में राधास्वामी वाणी का एक शब्द है जिसमें बड़े रोचक व संक्षेप ढंग से इस आवागमन पर प्रकाश डाला गया है। जो इस प्रकार है -

चार खान चौपड़ जग रची, अण्ड¹ जेर² सेदज³ उदभिजी⁴।

माया ब्रह्म पुरुष प्रकृति, मन इच्छा खेलें शिव शक्ति ॥

सुर्त⁵, नर्द⁶ ता में बहु पची, धूम खेल की अतिकर मची।

तीन गुनन का पासा लीन्ह, रजगुन तमगुन सतगुन चीन्ह ॥

कर्म हाथ से पासे डारे, भोग अंक ता में विस्तारे।

झूठी बाजी जानी सच्ची, कोई पक्की कोई मारे कच्ची ॥

नर्द सुरत चौरासी घर में, भरमत फिरे दुख और सुख में।

हारे ब्रह्म और जीती माया, जीव नर्द बहुविधि दुख पाया ॥

कभी-कभी ब्रह्म जीत जो होई, निज घर अपना पाये न कोई।

आया ब्रह्म खिलाड़ी दोई, खेलें इन नरदन से सोई ॥

भरमे नर्द पिटे और कुटे, दुख उनका कोई नहीं सुने।

सभी नर्द पछतावें दम दम, कैसे छूटें इनमें दम दम ॥

करे फर्याद दाद⁷ नहीं पावें, रोवें झीखें और चिल्लावें।

बार-बार भरमें चौरासी, कोई न काटे उनकी फांसी ॥

श्रुति स्मृति और वेद कुरान, सब ही मारे इनकी जान ।

माया काल बिछाया जाल, अपने स्वार्थ करें बेहाल^० ॥

कोई गोट न जावे घर को, यहां ही खेल खिलावें सबको ।

सत्त पुरुष देखा यह हाल, काल हुआ जीवन का काल ॥

अपने स्वाद जीव भरमावे, पता हमारा काहु न बतावे ।

पुरुष दयाल दया उमगाई, सन्त रूप धर जग में आई ॥

नर्दन को बहुविधि समझाया, काल निर्दई तुमको खाया ।

अब मैं कहूँ करो तुम सोई, जाल जाल कर न्यारे होई ॥

सतगुरु संग बांध जुग चलो, चोट न खाव काल बल दलो ।

वह घर काल बसाया आन, तुमको लाया हमसे मांग ॥

यह तो घर है काल का, घर अपना मत जान ।

निश्चय करके मानियो, जो अब करूं बखान ॥

निज घर तुम्हरा हमरे देश, अब मैं कहूँ देश सन्देश ।

सत्तनाम सत पुरुष कहाई, चौथा लोक सन्त कहें भाई ॥

ताके परे अलखपुर बसा, सन्त सुरत बिन कोई न धंसा ।
अगम लोक रचना तिस परे, बिन वहां पहुंचे काज न सरे ॥

ताके आगे निज घर जान, राधास्वामी धाम पिछान ।
इन लोकन की शोभा भारी, देखे सो जन जुक्ति सम्हारी ॥

अब जुक्ति का भेद सुनाऊं, सुरत शब्द की राह लखाऊं ।
मन इन्द्री उलटो घट माहि, सुरत निरत दोऊ नैन जमाई ॥

सहस कंवल चढ त्रिकुटी आओ, सुन्न के परे महासुन्न पाओ ।
भंवर गुफा सतलोक निहारो, अलख अगम के पार सिधारो ॥

राधास्वामी कहा बनाय, चौपड़ खेली अद्भुत आय ।
पौ पर बाजी अटकी आय, गुरु बिन पौ का दाव न पाय ॥

सन्त सतगुरु जो जन पाय, चौपड़ से बाहर हो जाय ।
निज घर अपने जाय समाय, राधास्वामी दर्शन पाय ॥

¹ अण्डज - जो अण्डे से पैदा होते हैं, ² जेरज - जो झिल्ली से पैदा होते हैं, ³ स्वेदज - जो पसीने से पैदा होते हैं,

⁴ उद्भिज - जो मिट्टी या खान से पैदा होते हैं, ⁵ सुर्त - सुरत, ⁶ नर्द - गोट, ⁷ दाद - इन्साफ, ⁸ बेहाल - दुखी ।

इस शब्द में आवागमन यानी चौरासी में जीवों के खिलाने और फंसाने का जिम्मेदार ब्रह्म और माया को बताया गया है । ब्रह्म और माया खिलाड़ी है जो जीव रूपी गोटों को इस संसार रूपी चौपड़ में खिलाते रहते हैं । हमेंशा माया की जीत होती है और ब्रह्म की जीत कभी-कभी होती है ।

यदि हो भी जाय और मनुष्य ब्रह्म में लय होकर आवागमन से बच जाय अर्थात् जीव रूपी गोट पासे के बीच में जो भाग होता है इसमें पक कर ठहर जाती है, फिर भी जब ब्रह्म चाहे पकी हुई गोट को कच्ची करके खेल में ले आता है। इस खेल से कोई भी आवागमन से नहीं बच सकता है। इस दशा में देखकर सतपुरुष को दया आई और सन्त रूप में प्रकट होकर जीवों को इस चौरासी से बचने का उपाय बताया और वह उपाय यह है -

सतगुरु संग बांध जग चलो। चोट न खाओ काल बल दलो।

अर्थात् इस आवागमन से बचने के लिए जीवित अनुभवी सन्त सतगुरु का आश्रय लेना अत्यंत आवश्यक है। वह जीव को सुरत शब्द योग सिखाता है जिसकी सीढ़ियां - सहस्रदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा, सतलोक, अलख, अगम हैं। और जब तक कोई व्यक्ति अगम देश में नहीं जाता, उसका काम नहीं बनता अर्थात् 84 नहीं छूटती। और जब तक इस सुरत शब्द योग को बताने वाला कोई सन्त सतगुरु नहीं मिलता, यह आवागमन नहीं छूटता।

तो अब बात स्पष्ट है कि इन चार प्रकार के जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति सूर्य व तारागणों की गर्मी व प्रकाश से होती है, जब यह गर्मी या प्रकाश स्थूल प्रकृति में प्रवेश करता है तो जीव-जन्तु आदि उत्पन्न होते हैं और उत्पत्ति के सिलसिले से यह रचना होती रहती है। यह सूर्य अपने मंडल को पैदा करता है और स्वयं ही अपनी किरणों द्वारा इनमें प्रवेश करता है। सूर्य से चन्द्रमा बना। उससे बुद्ध फिर बृहस्पति, फिर शुक्र आदि ग्रह बने। परन्तु यह सूर्य स्वयं किसी अन्य सूर्य से बना है और उससे प्रकाश लेता है। वर्तमान वैज्ञानिकों ने कुछ साल पहले उस सूर्य की तस्वीर ली है। सन्तों के ज्ञान व अनुभव में अनेक सूर्य हैं। यह कुल ब्रह्माण्ड, लोक-लोकान्तर सबके सब जिस प्रकाश, ताप और नूर से उत्पन्न हुए हैं, वह ब्रह्म हैं। और यह ताप, प्रकाश व नूर सर्व व्यापक है, इसलिए यह संसार सारा ब्रह्ममय है। अतः यह ताप, प्रकाश और नूर ही ब्रह्म है।

विज्ञान सिद्ध करता है कि हमारा पृथ्वीलोक किसी समय सूर्य का एक भाग था। ठण्डा होने पर वह पृथ्वी की शकल में प्रकट हुआ है। वही सूर्य अपने ही हिस्से में प्रवेश करके इस पृथ्वी

पर रचना करता है। यह प्रकाश और ताप ही इस लोक या ऊपर के लोकों में विभिन्न रंग रूप बनाकर स्वयं ही उनमें खेलता है। प्रत्येक जीवन की उत्पत्ति प्रकाश और ताप से है।

प्रकाश और ताप का स्थूल मादे के जड़ प्रकृति या सूक्ष्म प्रकृति में प्रवेश करने से शरीर या रूप बनते हैं और प्रत्येक रूप के अन्दर मानसिक और शारीरिक भान पैदा होता है। यह भान शारीरिक और मानसिक माया कहलाते हैं।

गो गोचर जहां लग मन जाई।

सो माया करत जानो भाई।।

कहने का भाव यह है कि हर एक रूप में हर समय ब्रह्म के साथ माया रहती है। इसलिए ब्रह्म और माया अर्थात् ताप प्रकाश और नूर और उनका प्रकृति के सम्मेलन से जो शारीरिक और मानसिक भान हर रूप में पैदा होते हैं, उनमें असल तत्व जो इस ताप प्रकाश और नूर का आधार है और जिससे यह उत्पन्न होते हैं, दुख-सुख, जन्म-मरण व अन्य प्रकार के अहसासों या बोध व भान में फंसकर खेलता है और इस खेल का नाम आवागमन है।

अब जिस मनुष्य पर गुरु की कृपा हो जाती है वह इस खेल में साक्षी भाव से तमाशा देखता रहता है और इस लोक में जीवन जीते हुए, सब खेल देखते हुए उसमें फंसता नहीं है। हाँ बाहर का प्रभाव अवश्य पड़ता है, परन्तु वह उसमें फंसता नहीं है, सम्भल जाता है और अपने निज स्वरूप में मस्त, बेफिक्र हो जाता है। यही बात पीछे इस राधास्वामी वाणी में बताई है कि सतगुरु से जुग बांधकर चलो और जो विधि वह बताए उस पर अमल करो। राधास्वामी पन्थ कोई अलग पन्थ नहीं है, यह सन्त मत है। कबीर साहब, पलटू, नानकदेव आदि सभी सन्तों ने एक ही बात अपने-अपने ढंग, शैली व तरीके से बताई है।

*

लख चौरासी योनियां

शास्त्रों में चौरासी लाख योनियों की चर्चा आती है और अनेक महापुरुष भी इसकी चर्चा करते हैं, परन्तु मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता हूँ। वैसे देखा जाए तो पृथ्वी, जल व आकाश में बहुत सी योनियां हैं। जिन महापुरुषों ने यह अनुभव किया होगा, शायद उन्होंने यह गिनती की हो और अपना खुद का अनुभव लिखा हो। हर मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न है और सबका अनुभव भी उनकी प्रकृति के अनुसार अलग-अलग होता है। मेरा अनुभव पहले दिन से ही सूक्ष्म लोक से ऊपर यानी प्रकाश के मण्डल से भी आगे का है। वहां केवल एक सार शब्द है और उसको सुनने वाली मेरी सुरत या (मैं) हूँ और कोई बात नहीं है, अपने आप में मस्ती, खुशी व शांति की हालत बनी रहती है।

वैसे सिद्धांत के अनुसार एक बार मनुष्य योनि में जो सुरत आ जाती है वह फिर मनुष्य योनि में ही आती है क्योंकि जो संस्कार जीव के होते हैं उसी के अनुसार वह जन्म लेता है ताकि उसके जो भाव, विचार या संस्कार हों उनका खेल वह पूरी तरह खेल सके। यह नहीं है कि मनुष्य जब दूसरा जन्म ले तो वह कुत्ता, बिल्ली, गाय, भैंस आदि अन्य योनि में आए। परन्तु यदि किसी मनुष्य ने दूसरी योनि के संस्कार ही ले रखे हों और उसकी इच्छा ही दूसरी योनि में जाने की हो तो संभव है कि वह दूसरी योनि में भी जन्म ले ले। यह सब खेल विचार, भाव संस्कारों का है। कहा है - **अन्त मता सो गता।**

शास्त्रों में इस विषय में जड़ भरत ऋषि की कथा आती है कि इतने बड़े ऋषि होने पर भी अन्त समय में एक हिरण में आसक्ति होने के कारण उन्हें हिरण की योनि भुगतनी पड़ी। परन्तु मेरा इस विषय में यही विचार है कि मनुष्य योनि एक बार धारण करने पर उसके संस्कार मनुष्य के ही होते हैं और उसका सम्बन्ध भी मनुष्यों से ही होता है। अतः उसके विचार, भाव, इच्छाएं

मनुष्य योनि में ही पूरी तरह अपना खेल पूरा कर सकती है।

एक बार किसी सत्संगी सज्जन ने मेरे गुरु महाराज पंडित फकीरचन्द जी से चौरासी लाख योनि के विषय में पूछा तो उन्होंने इस विषय पर अपना अनुभव इस प्रकार बताया कि – योनियों के विषय में धार्मिक संसार के लोगों का जो ख्याल है मुझे उस पर टीका-टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने अपने अनुभव के आधार पर योनियों का जो अर्थ समझा है, उसे प्रकट करता हूँ। योनियों से अभिप्राय मानव के शारीरिक और मानसिक बोध भाव हैं। जिनमें छः पिण्ड के और छः मन के चक्र हैं। यह मिलकर बारह होते हैं और प्रत्येक चक्र में काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार है तथा मन व बुद्धि के ये सात प्रकार के बोधमान हैं। इसलिए कुल $12 \times 7 = 84$ हुए। मेरी व आप सबकी सुरत इन चौरासी लाख योनियों में घूमती हुई दुख, सुख, हर्ष, शोक, चिन्ता आदि उतार-चढ़ाव के चक्र में आती रहती है। मैं बाहर में नाम लेना जरूर था, जप भी करता था, मगर सब व्यर्थ यानी न जपने के बराबर थे। मेरी समझ में चौरासी लाख योनि का यह मतलब है। इस तरह मेरी सुरत अनेक प्रकार के बोधमानों में घूमती रहती थी और अब भी उसका थोड़ा सा प्रभाव बाकी है जो लिखने आदि का काम कराता है।

आपने ऊपर मेरे गुरु महाराज जी का अनुभव समझ लिया होगा कि उन्होंने इस चौरासी लाख योनि को अपने निज के अनुभव के आधार पर कैसे समझा है। मेरा विचार तो यही है कि जिस महापुरुष ने अपनी प्रकृति, संस्कार के अनुसार जो भी इस आवागमन के विषय में अनुभव किया, वह उसका अपना अनुभव है परन्तु आवागमन यानी जन्म-मरण तो हम नित्य देख ही रहे हैं। यह तो नित्य का अनुभव है। इसको हमें स्वीकार करना ही होगा, क्योंकि हम खुद भी जन्में हैं और सबको मरना भी है। इस आवागमन से संबंधित एक राधास्वामी दयाल का शब्द है –

अरे मन देख कहाँ संसार, झूठे भ्रम हुआ बीमार।

भरे तेरे मन में सभी विकार, जतन से इनको दूर निकार।।

हुए फिर झूठा जगत असार, गहे फिर गुरु के चरण संभाल।
मिले फिर इससे नाम आधार, देख फिर घट में मोक्ष द्वार ॥

चलो फिर शब्द विचार विचार, पावो एक शब्द सार का सार।
पढ़ें क्यों भटको नैनन बार, झाक तिल खिड़की उतरो पार ॥

गुरु से लेना जुगती यार, गुरु बिन नहीं खुले यह द्वार।
कमाना जुगती तुम कर प्यार, लगाना सुरत सहज मन भार ॥

चले फिर सुरत धुनि की लार, चुवे जहां पल-पल अमृत धार।
नाम रस पियो रहो होशियार, ऋद्धि और सिद्धि रहें तेरे द्वार ॥

करो मत उनको अंगीकार, वहां से आगे धरो पियार।
चलो और देखो घर का सार, पहुंचना राधास्वामी के दरबार ॥

तो यह संसार दृष्टि सृष्टि का दृश्य है। जिसकी जैसी दृष्टि है उसको वैसी ही सृष्टि नजर आती है। जो मनुष्य अपने विचार के कारण अशांत हो या किसी भ्रम में हो तो उससे बचने का एक ही तरीका है कि वह अपने निज स्वरूप की तरफ ध्यान दे क्योंकि यह सारा संसार परिवर्तनशील है। सभी लोक-लोकान्तर आदि परिवर्तन के नियम के आधीन गति में हैं। यह सब का सब कालचक्र कहलाता है। इस चक्र के चलते रहने या परिवर्तन होते रहने से मनुष्य की सुरत (आत्मा) को दुख-सुख, हर्ष-शोक आदि भासता रहता है। यही अवस्थाएं आवागमन कहलाती है। यदि मनुष्य अपनी सुरत या तवज्जह को उस अकाल पुरुष या सार शब्द से जोड़े रखे तो वह

इस काल चक्र के प्रभाव से बच सकता है। दाता दयाल जी ने मेरे गुरु महाराज जी को चिताने के लिए एक शब्द लिखा है जिसे मैं आपके लिए लिखता हूँ -

काल चक्र इक सहज हिंडोला, झूला अचरज न्यारा।

सब कोई झूले झूला चढ़कर, काल झुलावन हारा ॥

चन्द्र सूरज दोऊ गगन में झूले, झूले नौ लख तारे।

जीव जन्तु पृथ्वी में झूले, नर पशु सकल विचारे ॥

राजा झूला रानी झूली, और प्रजा समुदाई।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर झूले, झूले सब दुनियाई ॥

लक्ष्मी झूली दुर्गा झूली, गायत्री महारानी।

देवा झूले देवी झूली, जल थल अगनी पानी ॥

काल भी झूला अपने झूले, सृष्टि प्रलय कर प्यारे।

वह भी बचा न चक्र से अपने, झूला झूले सारे ॥

चढ़ी पैंग तब ऊंचे आये, उतरी नीचे ठहरे।

कभी मिले तो जगमग देखी, बिछुड़ के हो गए न्यारे ॥

एक दशा में नित जो बरते, कोई नजर न आया।

पीर पैगम्बर कुतुब औलिया, ऋषि मुनि बच नहीं पाया ॥

पानी हुआ भाप की सूरत, धाया गिरि कैलाशा ।
बर्फ बना धारा बह निकली, नीचे किया निवासा ॥

नीचे भी रहने नहीं पाया, फिर ऊंचे की आशा ।
हम तो देखें खुली दृष्टि से, अचरज अजब तमाशा ॥

लकड़ी जलकर कोयला हो गई, कोयला राख अरु माटी ।
माटी-माटी में नहीं ठहरी, बनी काठ और लाठी ॥

विष्ठा अन्न-अन्न भया विष्ठा, सोई सब कोई खावे ।
यह प्रपंच है अद्भुत न्यारा, विरला कोई लख पावे ॥

जागृत स्वपन सुषुप्ति लीला, कभी ऐसी कभी वैसी ।
यह सब काल बली की माया, कभी जैसी कभी तैसी ॥

पंडित कभी अनाड़ी होते, कभी ज्ञानी अज्ञानी ।
कभी जड़ मिलजुल चेतन ठहरे, कभी चेतन जड़ जानी ॥

एक दशा में कोई न बरते, कभी मीठा कभी कडुआ ।
कभी थका कभी सोया लोटा, काल चक्र अति चौड़ा ॥

झूले की है विचित्र कहानी, कथा वार्ता न्यारी ।

नर को हम समझावन आये, सुने न बात हमारी ॥

दुख सुख सुख दुख द्वन्द्व पसारा, द्वन्द्व से प्यार बढाया ।

द्वन्द्व भाव ले जगत रचाया, द्वन्द्व के फांस फंसाया ॥

मन बुद्धि और चित्त अहंकारा, सो झूले की रसरी ।

दुलड़ तिलड़ चौलड़ बन आई, जीव निवल को जकड़ी ॥

जकड़े माया के फंदे में, रोये और चिल्लाये ।

शोर मचाये बहु चिल्लाये, छूटन विधि नहीं पाये ॥

तब दयाल को दया लागी, सन्त रूप धरि आया ।

राधास्वामी अचल मुकामी, शिव दयाल कहलाया ॥

नर शरीर में प्रगटा आकर, जीवन बहुत चिताया ।

जो कोई जीव शरण में आया, अपनाकर अपनाया ॥

सुन कमला यह गुरु उपदेशा, मैं भी तुझे सुनाऊं ।

बात जो मेरी मन से माने, इस झूले से तुझे बचाऊं ॥

खेल खिलाऊं सुगम सुहेला, सुरति शब्द मत गाऊं ।

काल हिंडोले से तू बाचे, विधि विचित्र समझाऊं ।।

कर सत्संग विवेक से गुरु का, गुरु दयाल हितकारी ।
साधू बनकर साध ले युक्ति, जा झूले के पारी ।।

नर शरीर सुर दुर्लभ पाया, सत संगत में आया ।
तेरा दाव पड़ा है पूरा, सोच समझ तज माया ।।

अबके चूके मौज न ऐसी, त्याग काल की आसा ।
आज का साधन आज ही कर ले, कल को होगा उदासा ।।

बार-बार नहीं अवसर प्रानी, काल महा दुखदायी ।
जो कोई करे काल की आसा, सो पाछे पछताई ।।

राधा स्वामी दयाल शिव, तेरे कारन थे आये ।
शीश चरन में उनके झुकाकर, अपना काम बनाये ।।

राधा स्वामी राधा स्वामी राधा स्वामी गाना ।
मन वचन कर्म से भक्ति कमाना, झूले बाहर जाना ।।

इस प्रकार आवागमन के विषय पर धार्मिक ग्रन्थों या महापुरुषों ने जो भी वर्णन किया है वह सब अपने-अपने अनुभव व बुद्धि के आधार पर इस शरीर में रहते हुए ही कहा है क्योंकि यहां

से जाने के बाद किसी मनुष्य ने वापिस आकर यह नहीं कहा कि वह अब कहां पर है ? जैसे -

“उतते कोई न आइया, जासे पूंछू जाय।

इतते सब कोई जात है, भरत लदाय-लदाय।।”

“फिरा न मुलके अदब से कोई कि

पूंछू मुसाफिरों मंजिल पर क्या गुजरी ?”

“तपा रे तपा काहे को खपा।

अन्त समय पता नहीं क्या हो भत्ता।।”

“कोटि-कोटि मुनि यत्न कराहिं।

फिर भी अन्त राम नहीं आहिं।।”

वास्तव में इस आवागमन से सम्बन्धित ये जितने भी भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न हैं यह तो सब तभी समाप्त हो सकते हैं जब मनुष्य बाहरी पूर्ण विवेकी सतगुरु से अगम का भेद समझकर, योग साधन करके अपना स्वयं का अनुभव कर लें कि मनुष्य जीवन में यह सुरत क्या है ? कहाँ से आई है ? और आखिर कहाँ जायेगी ? और यह स्वयं का अनुभव आवागमन पर सभी प्रश्न समाप्त कर देगा। ऐसा मेरा अनुभव है। वैसे तो प्राकृतिक नियम के अनुसार हम रोज ही आवागमन में सहज ही रहते हैं। जैसे हम जाग्रत अवस्था में चिन्ता, फिक्र और मन के तरह-तरह के भाव विचारों में उलझे रहते हैं और जब हम सहज ही गहरी नींद में चले जाते हैं तब हमारी सुरत अपने निज स्थान पर चली जाती है और फिर सहज ही वहां से उत्थान होने पर शरीर में आते ही वही प्रपञ्च शुरु हो जाता है। यह प्रतिदिन का प्राकृतिक आवागमन है और यदि मनुष्य इस आवागमन

से सदा के लिए बचना चाहता है तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि वह इसी जीवन में अपने स्वयं का ज्ञान प्राप्त करके सहज ही इसका अनुभव कर लें ताकि उसका आवागमन संबंधी कोई भ्रम व शंका शेष न रहे। यह मेरा नित्य का अनुभव है परन्तु अभी तक प्रारब्ध बाकी हैं जो भोग रहा हूँ। आशा है यदि यही ज्ञान अन्त समय रहा तो दोबारा इस लोक में नहीं आऊंगा, परन्तु यह बात इस शरीर में रहते हुए कह रहा हूँ। आगे उसकी लीला कौन जाने? वह तो अपरम्पार है।

तेरी लीला कौन जाने, तू तो अपरम्पार है।

एक दृष्टि तेरी से दुखियों का बेड़ा पार है ॥

*

आदि-अन्त (उत्पत्ति-प्रलय)

सब की आदि कहूँ अब स्वामी । अकह अपार अगाध अनामी ॥
तिन से अगम पुरुष प्रगटाये । अगम लोक में आसन लाये ॥
अलख पुरुष का हुआ उजाला । अलख लोक उन चौकी डाला ॥
फिर सतनाम पुरुष सत सोई । सत सत सत रचना जहां होई ॥
सत लोक वह धाम सुहेला । हंस करे वहां अचरज केला ॥
इन लोकन की महिमा भारी । कहूँ कहा अद्भुत विस्तारी ॥
सहस अठासी दीप निवासा, हंस करे जहां सदा विलासा ॥
सुख का धाम सदा सुख जहां । दुख कलेश का नाम न वहां ॥
नई-नई लीला सदा अनन्द । हंस करे नित परमानन्द ॥
अमी आहार भोग परचण्ड । सच्च खण्ड वह धाम अखण्ड ॥
वहां से भंवर गुफा रच राखी । सोहंग पुरुष नाम कह भाखी ॥
महासुन्न इक रचा ठिकाना । दीप अचिन्त महा मैदाना ॥
तिस के नीचे सुन्न विलास । अक्षर दीप रकार प्रकाश ॥
वहां से रचा त्रिकुटी । ओंकार का जहां विश्राम ॥
वेद कतेब का यही मुकाम । त्रिलोकी का कारण धाम ॥
झंझर दीप की रचन रचाई । निर्गुन काल की जहं ठकुराई ॥
गुन तीनों यहां से उतपाने । ब्रह्मा विष्णु महेश कहाने ॥
यहां से सरगुन रचा पसारा । चार खान उत्पत्ति विस्तारा ॥
जन्में मरें जीव चौरासी । काल निरंजन डाली फांसी ॥

वह दयाल पद कोई न पावै । निरगुन सरगुन चक्रर खावै ॥
अब प्रलय का भाखूं लेखा । जस सिमटाव जगत का देखा ॥
काल आप जीवों को ग्रासा । जीव समाने काल की स्वासा ॥
देही कारज पृथ्वी होई । पृथ्वी ने गिरसी पुनि सोई ॥
पृथ्वी घोली जल ने आय । जल को सोखा अगनि धाय ॥
अगनि मिली पवन के रूप । पवन हुई आकाश सरूप ॥
आकाश समाना माया माहिं । तम रूपा दीखे कुछ नाहिं ॥
माया रली ब्रह्म में जाय । शक्ति शिव में गई समाय ॥
शिव पहुंचे ओंकार मंझार । ओंकार समाने सुत्र के द्वार ॥

इस शब्द में कहा है कि वह मालिक अकह, अगाध, अपार और अनामी है और मैं इस बात से सहमत हूँ। मेरी अपनी सुरत जो उस परमात्मा का एक अंश है उसकी मौज से इस शरीर में आई है और अब मैं सतगुरु की कृपा से इस खेल को समझकर जीवित अवस्था में ही उस तत्व का जो शब्द रूप है सहज में अनुभव करता रहता हूँ। यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं, स्थूल लोक है। जो स्वप्न की अवस्था है तथा योग साधना में जो नजारे दृष्टिगोचर होते हैं वे सब सूक्ष्म लोक में है। योग साधना में शब्द-प्रकाश का अनुभव भी जिसको सन्त सतलोक कहते हैं, मेरे अनुभव के अनुसार बहुत ऊंचा साधन हैं परन्तु मेरे अनुभव में यह मिलौनी है। प्रकाश रचना करता है और शब्द निज रूप है। आनन्द दो तत्व की मिलौनी में है। प्रकाश के मंडल के आगे केवल शब्द है जिसके अनुभव को अलख और अगम कहते हैं। जहां शब्द और शब्द को सुनने वाली वस्तु गुम हो जाती है। यानी सुरत शब्द में लीन हो जाती है। मुझे इस स्थिति का अनुभव दो बार हुआ है जिसमें शब्द को सुनते-सुनते सुरत उसमें लीन हो जाती है और शब्द गायब हो जाता है। यह अवस्था गहरी नींद जैसी है जिसमें मनुष्य को कुछ होश नहीं रहता है। फिर वही शब्द की धार आ

जाती है व चेतनता बनी रहती है। तो इस अवस्था से मुझे क्या मिला? केवल शान्ति। हर समय शान्ति व मस्ती की अवस्था बनी रहती है।

इस संसार को जिसने रचा है वह एक एनर्जी या शक्ति है जिसके अन्तर से इच्छा संकल्प या विचार पैदा होते हैं। इसका प्रमाण मेरे पास केवल यह है कि जो सत्संगी अपनी इच्छा, संकल्प या वासना से जाग्रत, स्वपन या समाधि में मेरे स्वरूप को प्रकट कर लेते हैं और मेरा स्वरूप संकट में उनकी तरह-तरह की मदद करता है और मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं होती तो इसका अर्थ है कि इस सृष्टि का रचयिता भी कोई ऐसा महान पुरुष है जिसके संकल्प या वासना से यह सृष्टि बनती है। उसका देह भी है, मन भी है और आत्मा भी। स्थूल या जड़ पदार्थ या तत्व का नाम सन्तों ने क्षर रखा है। सूक्ष्म पदार्थ या तत्त्व का नाम अक्षर और कारण तत्व का नाम जो रचना करता है निअक्षर रखा हुआ है। इस स्थूल जगत में सूर्य, चन्द्रमा, तारागण जो आंख से देखे जा सकते हैं और जिन्हें उस विराट पुरुष खुदा की शारीरिक अवस्था कहा जा सकता है उसकी खोज तो वर्तमान विज्ञान कर सकता है, परन्तु इस स्थूल रचना को जो बनाती है जिसको सूक्ष्म प्रकृति या सन्तों ने जिसे अक्षर कहा है उसकी खोज वह तभी कर सकता है जब वह अपने मस्तिष्क की लैबोरेट्री में जाकर उसकी खोज करेगा। यह खोज केवल सन्तों ने की है। कैसे? अपने मस्तिष्क के अन्तर प्रवेश करके अपने शरीर की जो प्रकृति है और उस प्रकृति की जो आदि एनर्जी है जिसका नाम सन्तों ने त्रिकुटी रखा हुआ है और शास्त्र जिसे 'ओ·म्' कहते हैं, जब तक मनुष्य अन्तर में उससे परे नहीं जायेगा, उसे उस परमात्मा या बनाने वाले का ज्ञान नहीं हो सकता।

यह त्रिकुटी क्या है? वह बिन्दु है - अ, उ, म - ब्रह्मा, विष्णु, महेश। संकल्प उठता है, कुछ देर ठहरता है, फिर समाप्त हो जाता है। यह संकल्प क्यों उठते हैं। क्योंकि हमारे मस्तिष्क पर जो बाहरी प्रभाव या संस्कार देखने, सुनने या छूने से पड़ते हैं उनकी छाप वहां अंकित हो जाती है और वह अन्तर ध्यान में सिनेमा के स्क्रीन (पर्दे) की तरह भासते हैं जो वास्तव में है नहीं। इस त्रिकुटी से आगे सुन्न, महासुन्न की अवस्थाएं हैं जहां मन समाप्त हो जाता है और इससे आगे

आत्मा (प्रकाश) आ जाता है जिसको हम परमात्मा कहते हैं। 'आत्मा सो परमात्मा'। क्योंकि जो ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड में है। यह प्रकाश नूर का एक महान भंडार या चश्मा है जिसके अन्तर से माया निकलती है, विचार निकलते हैं और इस प्रकाश का गुण या स्वभाव है फैलना और रचना करना। जिस तरह सूर्य का गुण प्रकाश करना, फैलना और रचना करना है। इसी प्रकार उस परमात्मा का गुण या स्वभाव है रचना करना। हम उस परमात्मा के अंश हैं अतः हमारे अन्तर भी यही स्वभाव है। हमारी प्रकाश रूपी आत्मा के स्वाभाविक गुण के कारण हमारे अन्तर मानसिक जगत में संकल्प होते रहते हैं और हमारे शरीर के अन्तर करोड़ों कीट कीटाणु रक्त में, टट्टी में, थूक में, पेशाब में स्वयं पैदा होते रहते हैं। इसी तरह उस दुनिया के पैदा करने वाले की वासना या गुण से जहां इस दुनिया की उत्पत्ति होती है वहां उसके स्थूल शरीर में या विराट पुरुष में यह चार खान की रचना होती रहती है। जिस तरह हम अपनी खुशी के लिए सब काम करते हैं वैसे ही उस परमात्मा ने इस सृष्टि को अपनी खुशी के लिए उत्पन्न किया। और इस दुनिया में जो यह रचना है वह स्थायी नहीं है क्योंकि जो पैदा होता है या उत्पन्न होता है वह मरता है या नष्ट होता है। प्रत्येक शरीर में हर समय उत्पत्ति और प्रलय होती रहती है। हमारे शरीर के अन्तर जो शारीरिक, मानसिक रचना व प्रकाश को देखती है वह वस्तु और है और जो देखी जाती है वह दूसरी है। जो वस्तु इस रचना को देखती है या साक्षी है वह हम हैं। सन्तों ने इसका नाम सुरत रखा हुआ है। जब हमारी सुरत खेलते-खेलते इस परिवर्तनशील संसार के सुख-दुखों से ऊब जाती है तो वह ऐसी वस्तु की खोज करती है जहां सदा रहने वाला सुख है और जिसमें कोई बदलाव नहीं है, इससे यह सिद्ध हुआ कि सृष्टि का रचयिता जो ईश्वर है इसके खेल का आनन्द लेने वाली कोई शक्ति है जिसका नाम सुरत है। और जब तक मनुष्य की यह सुरत (जीवन धार) शब्द ब्रह्म के देश में नहीं जाती उसका आवागमन समाप्त नहीं हो सकता है।

जहां से हमारी यह सुरत आई हुई है वह हमारी आदि अवस्था है और वह है अलख, अगम और सत से परे। नानक, कबीर, स्वामी आदि सभी सन्तों ने सबकी प्रलय कही है। जैसे देह

भी नाशवान, मन भी नाशवान और प्रकाश भी नाशवान। परन्तु सत, अलख और अगम की प्रलय उन्होंने नहीं मानी। कोई भी सन्त इस जीवन में या शरीर में रहते हुए उस अनामी धाम में हमेशा के लिए लय न हो सके, उनका अस्तित्व कायम रहा, इसलिए शायद उन्होंने कहा हो कि सत, अलख और अगम में प्रलय नहीं होती। यह उनका अपना अनुभव रहा होगा। मेरे अनुभव के अनुसार जहां तक अस्तित्व (हस्ती) है उससे फिर जीवन बनता है और जो सदा के लिए उसमें लीन हो गया, उसने फिर यहां आकर नहीं बताया कि वह अब कहां है और उसकी क्या स्थिति है? यानी यह सृष्टि का चक्र अनादि काल से चला आ रहा है। यह सब उस मालिक की इच्छा का खेल है। जैसे कहा -

होहि है वही, जो राम रच रखा।

को कर तर्क बढ़ावत शाखा ॥

हुकमे हुक्मी चलना नानक लिखिया नाल।

राधास्वामी मत में उत्पत्ति और प्रलय का वर्णन है। स्वामी जी कहते हैं -

अब उत्पत्ति वर्णन करूं, जस संतन मन माहि।

पुनि परलय भी कहत हूँ, ताते भरम नसाही ॥

स्वामी जी परिवर्तनशील जगत को सिद्ध करते हैं कि यह उत्पन्न होता है और नाश होता है। ईश्वर भी बनता है और बिगड़ता है। राधास्वामी मत में इस अनुभव के आधार पर इस ईश्वर की रचना का जो ज्ञान है उसको वेदों का ज्ञान कहा है। और रचना करने वाले का जितना कर्म है वह नित्य सुखदायी नहीं है। इसलिए इस वेद ज्ञान को अधूरा कहकर उन सुरतों के लिए जो इस त्रिगुणात्मक जगत से सदा के लिए बचना चाहती हैं उनको आगे का मार्ग बताया है। स्वामी जी ने लिखा है -

वेद वचन त्रय गुन विषय, तीन लोक की नीत।

चौथे पद के हाल को, वह क्या जाने मीत ॥

अर्थात् ईश्वर इस त्रिगुणात्मक संसार को रचता है और जब तक किसी को यह ज्ञान नहीं कि वह ईश्वर क्या है ? कैसे रचना करता है ? वह ऊपर नहीं जा सकता और ऊपर जाने का रास्ता यह है कि अपनी सुरत को उस शब्द रूपी परमात्मा तत्व में जिसे अकाल पुरुष कहा है, लगाए रखने का प्रयास करो, इससे तुम्हें भेद समझ में आ जाएगा और सुख-दुख का अहसास नहीं होगा। मेरी सुरत अधिकतर उस तत्व से जुड़ी रहती है और मेरे अनुभव के अनुसार यही जीवन्मुक्त, मोक्ष या निर्वाण की अवस्था है। यह एक ऐसी हालत है जिसको हम State of Statelessness कह सकते हैं। यानी 'एक हालते बे हालती'। जिसका अनुभव किया जा सकता है परन्तु व्याख्या नहीं की जा सकती, जहां नूर व प्रकाश (ब्रह्म) और उससे उत्पन्न होने वाले शारीरिक और मानसिक भान नहीं होते हैं। अपने रूप को समझ कर जब तक प्रारब्ध है यानी प्रकाश इस देह में हैं वैसे कर्म करने के बाद मनुष्य अपने व्यक्तित्व को छोड़कर जात (निजस्वरूप-परम तत्व) हो जाता है और फिर न 'मैं' है न 'तू' हैं। न 'ब्रह्म' है और न 'माया'। यानी 'चिराग गुल पगड़ी गायब'। अर्थात् जो वस्तु जहां से निकलती है अन्त में वह उसी में मिल जाती है। जैसे बूंद का समुद्र में मिलना और किरण का सूर्य में समा जाना अन्तिम आवश्यक कार्य है। इसी प्रकार प्रत्येक सुरत का परम तत्व में पुनः मिल जाना भी अनिवार्य है चाहे इसको मिलने या लय होने की प्रक्रिया में कितना ही समय क्यों न लग जाए। सुरत गति से उत्पन्न होती है। समय पाकर वह गति से रहित हो जाती है या शान्ति प्राप्त होने पर अपने आधार परम तत्व में लय हो जाती है। इसके लिए नीचे एक शब्द है -

शब्द

क्या समझे कोई रूप हमारा, कौन उसे कह सकता है। (टेक)

अगम अगोचर अलख अनामी, नहीं यह और नहीं है वह।

सब में सबका सब कुछ है, क्या उसके बिना रह सकता है।।

सबका है आधार सहारे, उसी के लोक परलोक हुए।
जिसका वह आधार है, नींव को कौन उसके ढह सकता है ॥

वह न हो फिर कोई कैसे ठहरे, अधिष्ठान उसको जानो।
भार कौन सृष्टि का प्यारे, उसके सिवा सह सकता है ॥

उसमें इच्छा काम नहीं है, शुद्ध बुद्ध और मुक्त है वह।
जो ऐसा हो वह क्या लेगा, और क्या वह ले सकता है ॥

जिसने उसको जान लिया, फिर सब कुछ उसने जान लिया।
भौ सागर के भरम धार में, वह न कभी बह सकता है ॥

राधास्वामी धाम में अपने, निज स्वरूप का है वासा।
तीन ताप से तपै न जग का, अग्नि उसे दह सकता है ॥

इसलिए पूर्ण सन्तों या महापुरुषों ने इस संसार में प्रकट होकर मोक्ष, मुक्ति या निर्वाण पद के जिज्ञासुओं को सुरत शब्द योग की हिदायत दी कि वह सार शब्द को पकड़कर अपने रूप का ज्ञान प्राप्त करके हमेशा अपने निज धाम में वास करें।

अपने आपे को समझ आपे में सारा भेद है।
भेद जब अपना नहीं जाना तो भ्रम और खेद है ॥

नर में नारायण है, नारायण में नर है जाने ले।
भेद इनमें कुछ नहीं जा गुरु से गुरु का ज्ञान ले ॥

मैंने टूटे-फूटे शब्दों में अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर आवागमन विषय पर जो समझा है, लिखा है। कोई दावा नहीं है कि यही सच्चाई है। यदि किसी सज्जन ने खुद के अनुभव से कुछ ओर सच्चाई अनुभव की हो तो कृपया इस पर प्रकाश डालें।

सबको शान्ति शान्ति शान्ति ।

*

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

<u>क्र म</u>	<u>पुस्तक का नाम</u>	<u>प्रथम सं.</u>	<u>द्वितीय सं.</u>	<u>तृतीय सं.</u>	<u>चतुर्थ सं.</u>
1.	लाल कमल	1000 प्रतियां 4/03	2000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 12/06	4000 प्रतियां 6/08
2.	सहज योग	2000 प्रतियां 8/03	3000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07	
3.	सुज्ञी जीवन का रहस्य	3000 प्रतियां 10/03	4000 प्रतियां 8/05	4000 प्रतियां 2/07	
4.	मानव धर्म व अध्यात्म-ज्ञान	4000 प्रतियां 1/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08	
5.	मानव जीवन का सुखमय सफर	4000 प्रतियां 3/04	4000 प्रतियां 9/05	4000 प्रतियां 3/08	
6.	मनुष्य का कर्जव्य और धर्म	4000 प्रतियां 6/04	4000 प्रतियां 2/07	4000 प्रतियां 7/08	
7.	प्रश्नोजरी ज्ञान गंगा	4000 प्रतियां 10/04	4000 प्रतियां 2/07	4000 प्रतियां 7/08	
8.	मेरी धार्मिक खोज	4000 प्रतियां 5/05	4000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 7/08	
9.	Secret of Happy Life	2000 प्रतियां 4/05	4000 प्रतियां 2/07		
10.	ज्ञान योग	4000 प्रतियां 4/06	4000 प्रतियां 9/07		
11.	तज्ज्व ज्ञान दर्पण	4000 प्रतियां 5/06	4000 प्रतियां 9/07		
12.	योग मणि	4000 प्रतियां 6/07	4000 प्रतियां 3/08		
13.	कलैण्डर	1000 प्रतियां 3/04	2000 प्रतियां 10/05	4000 प्रतियां 2/07	4000 प्रतियां 7/08
14.	आवागमन	4000 प्रतियां 9/08			